इकाई 10: उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा विशेषोक्ति, (लक्षण,उदाहरण)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

अलंकारों के वर्णन में यह चौथी इकाई है , किन्तु नवीं इकाई में आपनें , श्लेष, यमक, अपहनुति, व्यतिरेक तथा विभावना आदि अलंकरों के लक्षणों उदाहरणों का विस्तृत अध्ययन प्राप्त किया है।

चन्द्रालोक पंचम मयूख में अलंकार वर्णन प्रतिपादित है। इसमें आठ प्रकार के शब्दालंकार और यदि उपभेदों को ग्रहण न किया जाय तो सतासी (87) अर्थालंकार निरूपित किए गए हैं। प्रायः सभी अलंकारों में उपमा के लिए उपमान एवं उपमेय अपरिहार्य होते हैं। अर्थालंकारों में इसका सर्वप्रथम स्थान है। उपमा के अन्यान्य भेदों द्वारा लक्षण ग्रंथों में निदर्शन प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप उपमा के वर्णन प्रयोग उसकी धर्मिता, विशेषता, तथा समीक्षात्मक ज्ञान को भी बताते हुए विभिन्न उपमाओं को समझा सकेंगे साथ ही रूपक, उत्प्रेक्षा विशेषोक्ति आदि अलंकारों की विशेषताओ का ज्ञान करा सकेंगे।

10.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्श्चात् आप उल्लेख कर सकेंगे कि-

1. उपमालंकार के अंग क्या-क्या है।

2. रूपकालंकार की विशेषताये कौन सी है।

3. उपमा एवं रूपक अलंकारों में मूलभूत अंतर क्या हैं।

4. उत्प्रेक्षालंकार रूपक तथा उपमा से किस प्रकार भिन्न है।

5. विशेषोक्ति अलंकार में उपमेय तथा उपमान का वर्णन किस प्रकार किया जाता है।

6. कार्य-कारण के भेद से अर्थालंकारों में उपमेय तथा उपमान को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है।

10.3. उपमा अलंकारः

संस्कृत लक्षणकारों ने अनेक अलंकारों की उपमा मूलक मानते हुए समान्यत: यह कहा है, कि अन्य अलंकारों में उपमा बीज रूप में कार्य करती है। उपमा अलंकार की प्रशस्ति में साहित्य जगत में कुछ उक्तियाँ अत्यंत रोचक रूप में प्रस्तुत की जाती है। चित्रमीमांसा में अप्पय दीक्षित ने कहा है कि उपमा एक नहीं है जो विचित्र भूमिकाएँ अपनाकर नाचती हुई काव्य के रंगमंच पर काव्यानुरागियों का मनोरंजन करती है -

उपमैका शैलूषी यम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।

अपने अलंकारसर्वस्व में आचार्य रूप्यक उपमा की प्रशस्ति बताते हुए उसे सभी अलंकारों का शिरोमणि कहा है वह काव्य सम्पदा का सर्वस्व है यही नहीं बल्कि वह कविवंश की माता भी है। इस उक्ति को राजशेखर की उक्ति भी माना जाता है तथा यह उक्ति अलंकारशास्त्र में अत्यन्त प्रसिद्ध भी है -

अलङ्कारशिरोत्नं सर्वरत्नं काव्यसम्पदाम्।

उपमा कविवंशस्य मतैवेति मतिर्मम ।।

वसतुतः अलंकारो के प्रयोग में अर्थालंकारों के अन्तर्गत उपमेय-उपमान के प्रयोगों द्वारा ही मुख्यतः अलंकार निर्मित किए जाते है अन्य उपाङ्गो के वर्णन इनकी पूर्ति हेतु हुआ करते है। रूपक अलंकार के अन्तर्गत इन दोनों के आरोप सिद्ध किए जाते है। मुख्यतः उपमा के चार पूरक अंग माने जाते है। उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द ये चारों जहाँ शब्द से प्रतिपादित हो वहाँ पूर्णोपमा कही जाती है और जहाँ इनमें से किसी एक की कमी रहे वहाँ लुप्तोपमा होती है। जैसे-

1. जिससे उपमा (समानता) बतायी जाय उसे उपमान कहते हैं। यथा चन्द्रमा के समान मुख है। यहाँ चन्द्र से मुख की समानता बताई जा रही है। अतः चनद्रमा उपमान है।

2. उपमा के योग्य पदार्थ को उपमेय कहते हैं। जैसे चन्द्र के समान मुख। यह मुख में चन्द्र की समानता बतायी जाती है। अतः मुख उपमेय है।

3. साधारण धर्म उसे कहते है, जो उपमान और उपमेय दोनो में एक रूप से रहता है। जैसे-चन्द्रमा के समान मुख मनोहर है। यहाँ मनोहरत्व धर्म उपमान चन्द्र उपमेय मुख इन दोनों में एक रूप से रहा है अतः यह साधारण धर्म है।

4. एक दूसरे के साथ समानता बताने वाले इस यथा, आदि शब्द उपमा वाचक कहे जाते है। यद्यपि चन्द्रालोक पञ्चम मय्ख में तथापि इसके वर्णन ही प्रसतुत इकाई का प्रमुख प्रतिपाद्य है, तथापि इसके सटीक एवं सविस्तार अध्ययन के लिए कतिपय प्रसिद्ध एवं मुख्य लक्षण कारों के अनुसार उपमा के वर्णन भी आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किए जायेगे। प्रथमतः चन्द्रालेक के अनुसार वर्णित उपमा इस प्रकार द्रष्टव्य है - लक्षणोदाहरण -

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मी रूल्ललसति द्वयोः।

हृदये खेलतोरूच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ।।

(चन्द्रालोक पञ्चम मयूख ।।11।।)

सरलता से उपर्युक्त लक्षण का अध्ययन करने क लिए इसका अन्वय करके भलीभाँति एक-एक तथ्यों को जानना आवश्यक है-

अन्वय- यत्र द्वयोः सादृश्यलक्ष्मीः ह्रये खेलतोः उच्चैः तनवड्गीस्तनयों इव उतलसति सा उपमा।

शब्दार्थ- यत्र- यास्मिन् अलंकारे (उपमेय और उपमान), सादृशस्यलक्ष्मीः सादृश्यशोभा (समानता की शोभा, सम्पदा) हृदये-वक्षः स्थले (वक्ष स्थल पर) खेलतोः क्रीडतोः छलकते हैं, उच्चेः- उच्चयोः उन्नततयोः (उभड़े हुए) तन्वड्गीस्तनयोः- सुन्दरी कुचयोः (सुन्दरी नायिका के स्तन) इवः यथा (जैसे), उल्लसति- शोभते (सुशोभित होता है।) उपमा- उपमालंकारः (उपमा अलंकार)

व्याख्या-सुन्दरी नायिका के वक्षःस्थल पर खेलते हुए उंचे स्तनों की तरह जहाँ उपमान और उपमेय दोनो समानता (सादृश्यता) को शोभा से विकसित हों वहाँ उपमा अलड्कार होता है।

तात्पर्यार्थ यह है कि सुन्दरी की छाती पर दोनों स्तन एक दूसरे के समान शोभित होते है। इसी तरह यहाँ उपमेय और उपमान एक दूसरे के समान शोभित होते हैं। उपमान उपयेय की अपेक्षा हमेशा श्रेष्ठ माना जाता है। तथा इसके प्रसिद्ध होनें की अनिवार्यता है। उपमालंकार के सटीक और नितान्त स्पष्ट विवेचन हेतु काव्य प्रकाशाकार के लक्षण यहाँ उल्लेख्य है-

' साधमर्यमुपमा भेदे समानधर्मता रूप सम्बंध कार्य-कारण आदि में नहीं अपितु उपमान और उपमेय में ही हो सकता है, और इसीलिए उ न्ही दोनों अर्थात् उपमान और उपमेय का ही जो समान धर्म से सम्बंध है उसे ही उपमान कहते है अर्थात् उपमा अलंकार वह है जिसे उपमान और उपमेय का, उनमे भेद होने पर भी परस्पर साधारण से सम्बद्ध होना **चाहिए।**

यथा - स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्रीर्न मुञ्चतिं

प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधनिपतिका यथा।। चन्द्रकोक पंचम मयूख

महाराज! विजयश्री आप सरीखे प्रभुत्वसम्पन्न महापुयष को संग्राम में स्वप्न में भी उसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहती जिस प्रकार कोई स्वाधीनपतिका नायिका अपने परमानुरक्त प्रियतम को स्वपन में भी नहीं छोड़ना चाहति। इस उदाहरण में 'विजयश्री' उपमेय है और स्वाधनिपतिका उपमान है, 'न मुञ्चति' अर्थात् अपरित्याग साधर्म्य अथवा साधारण धर्म रूप है और 'यथा' वाचक शब्द है। उपमा के चारों अंग यहाँ उपस्थित है, अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

यद्यपि आचार्य मम्मट काव्यशास्त्रीय समस्त तत्वों के विवेचन हेतु समन्वयवादी आचार्य माने जाते है, फिर भी साहित्य दर्पण में जो विश्वनाथ ने उपमा का लक्षण किया है प्रसंगतः वह भी समीचीन है-

साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः

अर्थात् उपमा वह अलंकार है जिसमें उपमान और उपमेय का साम्य या सादृश्य रहता है और वह स्पष्टतः एक वाक्य में प्रतिपादित होता है। यहाँ पर वैद्यर्म्य की कोई चर्चा नहीं होती। वस्तुतः आपके अध्ययन का विषय चन्द्रलोक में वर्णित उपमा है किन्तु उपमा अलंकार के स्वरूप आदि को जानने व पहचानने के लिए यहाँ आचार्य मम्मट और विश्वनाथाचार्य द्वारा बताये गये उपमा के लक्षण का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

उपमा के अन्यान्य प्रकारों को बताते हुए चन्द्रालोककार ने सर्वप्रथम उपयेयोपमा को एक पृथक अलंकार के रूप में चित्रित किया है, किन्तु उपमा के तत्व इसमें भी पाये जाते हैं। जैसे-प्रथम वाक्य जब उपमान अथवा उपमेय द्वितीय वाक्य में क्रमशः उपमेय या उपमान बना दिया जाय तो उपमेयोपमा अलंकार होता है। उदाहरण के लिए-धर्मोऽर्थइव पूर्वश्रीः अर्थोधर्म इवत्वयि। अर्थात् यहाँ पर प्रथम वाक्य में उपमेय धर्म दूसरे वाक्य में उपमान बना दिया गया है, इसका अर्थ है, आपका धर्म अर्थ की तरह पूरा है और धर्म अर्थ की तरह पूर्ण है।

इसी प्रकार जयदेव ने प्रतीपोपमा के लिए उपमान को अप्रसिद्ध या कल्पित नहीं स्वीकार किया है, किन्तु वे मानते है कि जब उपमान रूपी किसी भी पदार्थ को उपमेय बना दिया जाय तो प्रतीपोपमा अलंकार होता है।

जैसे-इन्दुर्मुखमिवेत्यादौ स्यात्प्रतीपोपमा तदा।।

(चन्द्रालोक, पंचम मयूख।।14।।)

अर्थात् इस उदाहरण में मुख को उपमानत्व प्रदानकर दिया गया है तथा चन्द्रमा को उपमेत्व प्रदान किया गया है इसलिए यहाँ प्रतीपोपामा होती है।

जहाँ उपमान पद के साथ लीला आदि पद प्रयुक्त हो, वहाँ ललितोपमा अलंकार होता है।

जैसे-उपमाने तु लीलादिपदाढ्ये ललितोपमा।

त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजन्मनों।।

(चन्द्रालोक, पंचम मयुख।।15।।)

अर्थात्-कामिनी के दोनों नेत्र नीलकमल की शोभा धारण करते है। यहाँ उपमान पद नील कमल के साथ लीला पद का भी प्रयोग किया गया। है। इसका तात्पर्य है कि कामिनी के नेत्र लीला शोभा के समान सुन्दर है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि जिसकी शोभा (लीला) उपमेय धारण करता है वह उपमान होता है और उपमान लीला (लीला) उपमेय धारण करता हैं। वह उपमान होता है और उपमान लीला (शोभा) का उपमेय में आरोप होता है, जिससे लीला में उपमेय प्रतीत होता है।

स्तषकोपमा अलंकार में उपमान और उपमेय द्वन्द्व की समानता वर्णित होती है। यथा-भौंरा जैसे कमल का आश्रय लेता है, वैसे ही मैं भगवान् विष्णु के चरणों का आश्रय लेता हूँ। यहाँ अहं पद का उपमान भौरा है और चरण का उपमान कमल है।

जैसे- अनेकस्यार्थयुग्मस्य सादृश्यं स्तबकोपमा।

श्रितोडस्मि चरणों विष्णोर्भृङ्गस्तामरसं यथा।।

(चन्द्रालो, पं चम, मयू ख ।।16।।)

ज्ब उपमान एवं उपमेय दोनों ही वर्ण्य हों तब सम्पूर्णोपमा लंकार होता हैं

जैसे- सयात्सम्पूर्णोपमा यत्र द्ववयोरपि विद्ययता।

पद्मानीव विनिद्राणि नेत्राण्यासन्नहर्मुखे।।

यथा-प्रातःकाल में कमलों के समान मनुष्यों के नेत्र भी निद्रारहित हो गये।

अभ्यास प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के एक शब्द में उत्तर दें।

क. उपमा अलंकार के कितने भेद है?

ख. उपमान और उपमेय द्वन्द की समानता किस अलंकार में होती है।

ग. उपमान उपमेय से श्रेष्ठ होता है।

10.4. रूपक अलंकार

चन्द्रालोक के 'पंचम मयूख में जयदेव ने रूपक अलंकार का लक्षण उदाहरण इस प्रकार किया है-

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते।

उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते।।

(चन्द्रालोक , पंचम, मयू ख ।।18।।)

जहाँ उपमान उपमेय में एकता प्रतीत हो, अर्थात् उपमान रूपी चित्र में उपमेय रूपी चित्र मिला हुआ रहे वहाँ रूपक अलंकार होता है। उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात कर लिये जाने पर रूपक

अलंकार होता है। उदाहरणार्थ-उपमेय शब्द का उपमान भित्ति है और उपमेय मयीभित्ति है। इस तरह दोनों में भेद नहीं हैं। (भित्ति दीवार) ने उपमेय की सत्ता अपने मे समाहित कर लिया है। इसी तरह न 'चन्द्रमुख देखों' में मुख उपमेय और चन्द्र उपमान हैं और इसका अर्भ होता है, मुखही चन्द्र हैं उसे देखों यहाँ चन्द्रमा (उपमान) द्वारा मुख (उपमेय) को समाहित कर लिया गया है।

रूप्यतीति रूपक, यह रूपक का व्यत्पत्ति अर्थ है, जिसका तात्पर्य उपमा और उपमेय में अभेद (भेद रहित) का आरोप कर उन्हें एक करने वाला रूपक होता है। कुवलयानन्द के व्याख्याकार आशाधर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि-**रूपवत् करोति रूप्यति वा रूपको लक्षणविशेषः सोऽस्मिन्नस्तीति रूपकमलंकारः ।।18।।**

अर्थात् जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमा समानरूप् वाला बना दिया जाता है वह रूपक होता है । चन्द्रालोककार ने रूपक के तीन भेद किए है। रूपक के तीन भेद किए हैं। रूपक अलंकार के मूल लक्षण के पश्चात् आचार्य जयदेव ने इनके भेदों के वर्णन भी किए है । जिसमें प्रथम सोपाधिरूपक द्वितीय सादृश्यरूपक, तथा तृतीय आभास रूपकों के लक्षण उदाहरण सहित विवेचन भी किए हैं ।

सोपाधिरूपक- इसका लक्षण करते हुए आचार्य जयदेव ने कहा है-

समान धर्मयुक्साध्यारोपात्सोपाधियपकम् ।

उत्सिक्त-क्षितिभृतलक्ष्य-पक्षच्छेदपुरन्दरः ।। (चन्द्रालो, पंचम, मयुख ।।19।।)

अर्था।त्-जहाँ साधारण धर्म के सम्बध से प्रकृति आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है। जैसे- यह राजा ऊँचे-ऊँचे पर्वत रूपी राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है । अर्थात् जिस प्रकारइन्द्रपर्वतों के पक्ष काटने में समर्थ है वैसे ही यह राजा भी मदोन्मत्त शत्रुभूत राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है ।

सादृश्यरूपक- सादृश्य रूपक का लक्षण है-

पृथवकथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम्।

उल्लसत्पं चशाखस्ते राजते भुजभूरूहः।। (चन्द्रालो, पंचम, मयूख ।। 20 ।।)

अर्थात्- जिस अलंकार में उपमान तथा उपमेय दोनों का सादृश्य भिन्न-भिन्न पदों से कहा जाय वहाँ सादृश्ययपक होता है । जैसे - पाँच अँगुलिरूप् शाखाओं से युक्त आपका यह हाथ रूपी वृक्ष शोभा दे रहा है । वृक्ष और शाखा का सादृश्य अलग-अलग पदों से बतलाया गया है। अतः यहाँ सादृश्य रूपक है ।

आभास रूपक- आभास रूपक का लक्षण है-

स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधाभासरूपकम् ।

अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम् ।। (चन्द्रालोक, पंचम, मयुख ।।21।।)

अर्थात् - यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो आभास रूपक होता है। यहाँ केवल शरीर की लम्बाई को देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया गया है। इसलिए यहाँ रूपक केवल आभास मात्र है ।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में -

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः अर्थात् उपमेय और उपमान का जो अभेद-अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद है उसे रूपक अलंकार कहा जाता है । ऐसा बताते हुए रूपक का लक्षण किया है तथा उन्होने इसके छः भेद बताये है।

10.5. उत्प्रेक्षा अलंकार

उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षणोदाहरण करते हुए जयदेव ने चन्द्रालोक में कहा है कि -

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुति विना ।

त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी ।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात् बिना निषेध के ही जहाँ कारण, फल और वस्तु (स्वरूप) में अतिशय संदेह किया जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे-मुख की शोभा प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा कमलों से शत्रुता कर रहा है-त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी।।

प्रस्तुत उदाहरण में मुख के शोभा की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा द्वारा कमलों से वैर करना फल तथा स्वरूप में अतिशय संशय है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा है।

शब्दार्थ- यत्र -जहाँ पर, निह्नुतिं-निषेध बिना-रहित, हेत्वादि-कारण फल स्वरूप आदि, उन्नीयते-उत्कटैक-(कोटिक अत्यन्त संदेह) ,।

उपर्युक्त उत्प्रेक्षा वर्णन में कुछ विशेष बातें इसके निर्णय हेतु अथवा स्वभाव ज्ञान हेतु अध्येता के समक्ष उपस्थित होती है, जिनका उल्लेख प्रसंगतः अनिवार्य प्रतीत होता है। वृत्तिभाग के अवलोकन में उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की बताई जाती है -

'सच हेतु फल स्वरूपभेदात् त्रिविधा । अत्र चन्द्रपद्मयोः विरोधः स्वाभाविकः न मुखकान्ति लिप्साहेतुकः तथापि तेद्धेतुकत्वेन संभावनात् हेतुत्प्रेक्षा, अनयोः विरोधेऽफलस्यापि

कान्तावदनकान्तिप्राप्तेः फलत्वेनोत्प्रेक्षणात् फलोत्प्रेक्षा, एवं वस्तुतो बैर कर्तर्यपि शशिनि पद्मसंकोचच्वनिमित्तेन वैरकर्तृतादात्म्मोत्प्रेक्षणात् स्वरूपोत्प्रेक्षा।

अर्थात् - यहाँ चन्द्रमा और कमल का वैर स्वतः सिद्ध रहते हुए भी पद्मगत कान्तमुख की शोभा प्राप्ति हेतु चन्द्रमा के वैर (शत्रुता) का फल न रहते हुए भी उसे फल कहना फलोत्प्रेक्षा है। चन्द्रमा के उदित होने पर कमल अपने आप ही संकुचित हो जाते है, उसी से चन्द्रमा को वैर (शत्रुता) कर्ता रूप में प्रतिपादित है। इसलिए वस्तूत्प्रेखा भी है। यहाँ एक बात विशेष रूप से कहने योग्य है कि आचार्य दण्डी अपने ग्रंथ काव्यादर्श में उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्दों को बताया है जो इस प्रकार है-

मन्ये, शङ्क ध्रवं प्रायौ नूनमित्येवमादिभिः।

उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽतादृशः।। (काव्यादर्श ।।2/234।।)

अर्थात् - मन्ये शङ्क, ध्रुवं, प्रायः नूनम् और इव शब्द उत्प्रेक्षा के व्यंजक है। उक्त उदाहरण में नूनम् शब्द आने से अगूढा (वाच्या) उत्प्रेक्षा है, उसे हटा देने से गूढ़ा हो जायेगी। क्रिया से संयुक्त होने पर ही इव उत्प्रेक्षा वाचक होता है। अन्यथा यह उपमा वाची है उत्प्रेक्षा का अर्थ उन्नयन (ऊपर ले जाना) है, जिसका स्वाभाविक अर्थ सम्भावना है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में जो परिभाषा सम्भावना की दो वह अधिक स्पष्ट है। उनके अनुसार उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाने पर उत्प्रेक्षा होती है। और चन्द्रालोक कार के अनुसार हेतु, फल या स्वरूप की सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षा होती है। ऊपर बताए गये उदाहरण में हेतु की सम्भावना की गई है।

फलोत्प्रेक्षा - ऊपर कहे गये उदाहरण से यह भाव लिया जा सकता है कि चन्द्रमा ने कमलों से कलह करके उनमें उपस्थित कान्तामुख कान्ति (चमक) छीन लिया है। अतः इस स्थिति में कान्ति प्राप्ति वैर का फल होगा और सम्भावना करने पर फलोत्प्रेक्षा हो जायेगी।

वस्तूत्प्रेक्षा - चनद्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप् से कमल संकुचित (सिकुड़) हो जाता है। इस वस्तु (बात) के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण है। चन्द्रालोककार ने उपर्युक्त भेद के अतिरिक्त गूढ़ोत्प्रेक्षा का लक्षण उदाहरण दिया है-

इवादिकपदाभावे गूढ़ोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।

त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात् - जिस अलंकार में वाचक शब्दों, इव, मन्ये, शङ्के ध्रुवं, प्रायः और नूनं आदि पदो के रहनेपर भी हेतु, फल, स्वरूपगत संभावना और नूनं आदि पदो के रहने पर भी हेतु, फल स्वरूपगत संभावना की जाय वह गूढ़ोत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उदाहरणार्थ यहाँ देखा जा सकता है- **त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।।** अर्थात् हे राजन! आपकी कीर्ति समसत भुवन में

भ्रमण करने से थककर (श्रान्त) स्वर्ग गंगा में स्नान करने के उद्देश्य से प्रविष्ट हुयी (प्रवेश किया) अर्थात् उापकी कीर्ति स्वर्ग लोक तक पहुंच गयी। स्पष्ट है, जैसे अत्यन्त भ्रमण से थका हुआ प्राणी अपनी थकावट को दूर करने के लिए नदी का आश्रय (शरण) लेता है वैसे ही समस्त लोकों के भ्रमण से थकी हुयी आपकी कीर्ति मानो अपनी थकावट दूर करने के लिए आकाश गंगा में प्रवेश किया। यहाँ गूढ़ोत्प्रेक्षा है। विश्वनाथ आचार्य का मत है -

'' उत्प्रेक्षा वह अलंकार है जिसे अप्रकृत (उपमान) के रूप में प्रकृत (उपमेय) की सम्भवना कहा करते हैं।'' (साहित्यदर्पण 10/40-41)भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकश उत्प्रेक्षा का लक्षण करते हुए लिखा है -

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् (काव्यप्रकाश 10 / 127)

अर्थात् उत्प्रेक्षा उस अलंकार को कहते हैं जिसमें प्रकृत (उपमेय) की उसके समान अप्रकृत (उपमान) के साथ तादात्म्य (परस्पर) सम्भावना की जाती है।

जैसे- लिम्पतीव तमोडङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।

असत्पुरूषेवेव दृष्टि र्विफलतां गता ।।

अर्थात् -ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे अंधेरा अंग-अंग मे लेप लगा रहा हो, आकाश काजल बरसा रहा हो और आँखें दुष्ट सेवा की भांति व्यर्थ हो गयी हो।

यहां पर उपमेय (अंधकार) के प्रसार की उपमान (लेपन, काजल, वर्षण) आदि के साथ एकरूपता की संभावना की गयी है।

अभ्यास प्रश्न -2

1. निम्नलिखित में से सही उत्तर चुनिए।

क. चन्द्रालोक में रूपक के भेद है-

क- तीन ख- चार ग- दो घ- पाँच

ख. जिस अलंकार में वाचक शब्द न रहने पर भी फल, हेतु, स्वरूप की सम्भावना की जाती है, वहाँ होता है ?

क हेतुत्प्रेक्षा ख- ; गूढ़ोत्प्रेक्षा ग- फलोत्प्रेक्षा घ- वस्तूत्प्रेक्षा

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए

क. वस्तूत्प्रेक्षा किसे कहते है?

ख. आशाघर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार की है?

ग. आभास रूपक लक्षण बताइए।

घ. '**त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्ग निम्नगाम्**' इसमें कौन सा अलंकार है? उसका लक्षण लिखिए।

3. निम्नलिखित वाकयों में सत्य-असत्य का निर्धारण करें।

क. जहाँ साधारण धर्म सम्बंध से प्रकृत आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है।

ख. अपमान के द्वारा उपमये को आत्मसात किए जाने पर गूढ़ोत्प्रेक्षा होती है।

ग. मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः आदि उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्द हैं।

10.6. विशेषोक्ति अलंकार

सामान्यतः समस्त जगत् में बिना कारण के कभी कार्य नहीं होते दार्शनिकों , चिन्तकों आदि सबने कार्य-कारण सम्बंध परखा है तथा सांख्य दर्शन के अन्तर्गत इसकी विशद विवेचना भी की गयी है, आप भी जानते है कि, लोक व्यवहार में भी कार्य और कारण की प्रधानता व्यवस्थित है। किन्तु हमारे साहित्यिकों ने एक तरफ जहाँ पर किसी भी कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का होना असम्भव है उसे भी अपनी प्रतिभा के द्वारा विना कारण के कार्य की उत्पत्ति होना बताया है, और अनेक कारणों के होते हुए भी किसी कार्य का न होना बताया तथा दोनों स्थितियाँ में विभावना और विशेषोक्ति अलंकार की सृष्टि की है। आचार्य जयदेव भी इस संकल्पना से अछूते नहीं हैं, विशेषोक्ति अलंकार का लक्षण और उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

लक्षण- विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।

नमनतमापि धीमन्तं न लंघयति कश्चन।। (चन्द्रालोक ।।5/78।।)

अर्थात-जहाँ पर कारण के विद्यमान रहते हुए भी कार्य उत्पन्न ने हो वहाँ पर विशेषोक्ति नामक अलंकार होता है। उदाहरण के लिए-**" नमन्तमपि धीमन्तं च लंघयति कश्चन''अर्थात्** बुद्धिमान के झुक जाने पर भी उन्हे कोई लाँघ नही सकता। प्रस्तुत उदाहरण में झुकना कारण रूप् में विद्यमान है, फिर भी उल्लंघन (लाँघना) आदि कारण उत्पन्न नहीं हो रहा है।यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि सामान्य व्यवहार में सबको ज्ञात है कि कारण रहेंगे तो कार्य उत्पन्न होगा ही किन्तु कारणों के उपस्थित रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति का ख्यापन (प्रकटीकरण) न करना हो विशेषोक्ति अलंकार

का स्वभाव है। विद्वान निश्चित रूप से बड़ा होता है, उसके झूकने का तात्पर्य उसकी नम्रता से है तो बुद्धिमत्ता और विनम्रता दोनों की ऊँचाइयों का पार करना किसी के लिए भी असम्भव है। इसीलिए यहाँ पर लंघित (लाँघने) होने के सभी कारण हैं किन्तु कोई कार्य नहीं होने से विशेषोक्ति है।

शब्दार्थ - कारणे - निमित्त या हेतु सति-विघमानता कार्यस्य- कार्य के, अनुत्पत्तिः- उद्भव का अभाव, विशेषोक्ति- विशेष अर्थात् कि अनुत्पत्ति की उक्ति को विशेषोक्ति कहते हैं। उक्तिः-कथन, नमन्तं- नत मस्तक, न लंघयति- नहीं लाँघ सकता।

संस्कृत लक्षणकारों ने अपने लक्षण ग्रंथों में अलंकार वर्णन करते हुए कहीं भी इन तथ्यों को नकारा नहीं है। यदि विशेषोक्ति अलंकार को और विस्तार से समझना हो तो उदाहरण स्वरूप् कतिपय प्रसिद्ध आचार्यों के लक्षणों का अध्ययन किया जा सकता है -

इसी सन्दर्भ में आचार्य मम्मट ने विशेषोक्ति का लक्षण अर्थात्-कारणों के होने पर जहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है।

जैसे - **निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते।**

श्लथीकुताश्लेषरसे भुजड़ेग चचाल नालिड्गनतोड्गना सा।।

इस उदाहरण में यह बताया गया कि-नायिका नींद के टूटने पर भी, भगवान् सूर्य के उदित होने पर भी, सखियाँ के शयन-कक्ष के द्वार पर भी, और आलिड्गन के आनंद में अपने प्रेमी के ढ़ीले पड़ जाने पर भी, वह आलिड्गन करना नहीं छोड पायी। अर्थात् यहाँ आलिड्गन परितयाग के सभी कारण नींद टुटना, सूर्योदय, सखियों का शयन-कक्ष के बाहर उपस्थित होने पर कार्य रूप नायिका आलिड्गन से अलग नही हो सकी। अतः यहां विशोषोक्ति अलंकार है। इन्होने विशेषोक्ति के तीन प्रकार भी बताये है- ; अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ; उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ; अचिन्त्यनिमित्ता विशेषोक्ति।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी विशेषोक्ति का लक्षण और उदाहरण करते हुए कहा है कि- **सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा। (साहित्यदर्पण, 10 परिच्छेद, 35)**

अर्थात जहाँ कारण रूप सारे तथ्य विद्ययमान हो फिर भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ में विशेषोक्ति अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है-(प) उक्त निमित्ता विशेषोक्ति (पप) अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति।

अन्तर-लक्षण और उदहरण के क्रम में व्याख्यात्मक रूप से उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, और विशेषोक्ति अलंकारों के उध्ययन से आपने उनके स्वभावों को अवश्यक जान लिया होगा, किन्तु समस्त अलंकार एक जैसे नहीं होते यद्पि अर्थालंकार में उपमेय एवं उपमानों के ही वर्णन दिए जाते है किन्तु

इनकी प्रयोग धर्मिता से तथ्य परिवर्तित होकर विभिन्न अलंकारों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। अब आप इन अलंकारों में मूलभूत अन्तर क्या होते हैं इसका अध्ययन करेंगे।

उपमा एवं रूपक -उपमेय तथा उपमान रूपक में भी होते और उपमा में भी किन्तु उपमा अलंकार में उपमेय तथा उपमान दोनों में सादृश्य अथवा साधर्म्य वर्णित होता है। जिसके साधारण धर्म और वाचक शब्द होते हैं इसकी उपेक्षा रूपक अलंकार में उपमेय का उपमान ढ़क लेता है अर्थात् उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लिया जाता है। उपमा में उपमेय तथा उपमान का भेद सहित वर्णन होता है किन्तु रूपक में यह वर्णन अभेद होता है। यद्यपि यह अभेद वास्तविक नहीं होता।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा- उपमा और उत्प्रेक्षा दोनो का वाचक शब्द इवह ◌ै। उपमा में समानता का अर्थ निकलता है, किन्तु उत्प्रेक्षा में मानों का अर्थ निकलता है। उपमा सादृश्यमूलक भेदाभेद प्रधान अलंकार है, तथा उत्प्रेक्षा सादृश्यमूलक में अध्यवसाय मूलक अभेद प्रधान अलंकार है। इनका स्वभागत अंतर निम्न प्रकार है-

1. उपमा का प्राण सादृश्य (समानता) है, उत्प्रेक्षा का प्राण सम्भावना है।

2. उत्प्रक्षा में मन्ये, शंके, प्रायों, नून इत्यादि का वाचक शब्द की रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उपमा में इनका प्रयोग नहीं होता।

3. उपमा में इव का प्रयोग संज्ञा के साथ होता जबकि उत्प्रेक्षा में इव का प्रयोग क्रिया पद के साथ होता हैं

4. उपमामें उपमान लोक प्रसिद्ध होता है और उत्प्रेक्षा में उपमान कवि कल्पित होता है।

इसके बाद की इकाई में विभावना अलंकार का लक्षण एवं उदाहरण आपके अध्ययन हेतु प्रसतुत होगा वही आप विशेषोक्ति एवं विभावना के स्पष्ट अंतर का बोध कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न-3

1.निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द में दो ।

क. सभी कारण उपस्थित रहने पर कार्य की उत्पत्ति न होना अलंकार है

ख. आचार्य मम्मट ने विशेषोक्ति के कितने प्रकार माने हैं ?

ग. आर्चय जयदेव ने विशेषोक्ति का क्या लक्षण दिया है ?

घ. साहित्य दर्पण में विशेषोक्ति के कितने भेद है?

10.7. सारांश

उपमेय, उपमान, वाचक शब्द साधारण धर्म आदि से निर्मित होने वाले और उत्प्रेक्षा अलंकारों के साथ ही कार्य-कारण से संबंधित विशेषोक्ति अलंकार का अध्ययन इस इकाई के अन्तर्गत किया। प्रस्तुत इकाई में लक्षणकार जयदेव रचित चन्द्रालोक के आधार पर मूलरूप में इन 4 अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन दिए गये हैं। उपमा वर्णन में जयदेव ने सादृश्य को ग्रहण किया है, और मम्मट ने साधर्म्य को। रूपक अलंकार में जिस प्रकार की उद्धावना चन्द्रालोककार की है, आर्चाय मम्मट भी लगभग उसी प्रकार मानते हैं। क्योंकि उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लेने पर रूपक अलंकार के बनने की बात जयदेव ने की है, और उपमेय तथा उपमान के अभेद वर्णन में रूपक अलंकार मम्मट ने माना है। यही उपमेय और उपमान विशेषोक्ति मे कार्य-कारण कहे जाते हैं। जिनका अध्ययन आपने इस इकाई में किया है। विशेषोक्ति अलंकार की उद्धावना अन्य लक्षणकारों में लगभग एक समान दिखाई देती है। सम्भावना के अर्थ में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा को जयदेव ने कारण कार्य तथा वस्तु में अतिशय संदेह के द्वारा प्रकट किया है।

10.8. पारिभाषिक शब्दावली

1. शैलूषी - नटी
2. चित्रभूमिकाभेदान - विचित्रभूमिकाओं को अपना कर
3. रन्जयति - मनोरंजन करती है।
4. समरेषु - युद्ध में
5. क्षितीश्वर - राजा
6. प्रतीप - विपरीत
7. यष्टि - छड़ी
8. श्रितोऽस्मि - आश्रय लेता हूँ

10.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1.

1. क 5 (पाँच)

ख- स्तबकोपमा

2. क-सत्य

ख-असत्य

ग-सत्य

अभ्यास प्रश्न -2

1. क - तीन

ख - गूढ़ोत्प्रेक्षा

2. क. वस्तूत्प्रेक्षा-चन्द्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप से कमल संकुचित हो जाता है। इस वस्तु के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा है।

ख. रूपवत् करोतिरूपयतिवारूपकोलक्षणाविशेषःसोऽस्मिन्नस्तीति रूपकमलड़्कारः॥18॥

अर्थात्, जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमान समान रूप वाला बना दिया जाता है, वह रूपक होता है।

ग. आभास रूपक- यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो वहाँ आभास रूपक होता है। शरीर की लम्बाई देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया है अतः आभास रूपक है।

3. क. सत्य ख. सत्य ग. सत्य घ. गूढ़ोत्प्रेक्षा

अभ्यास प्रश्न - 3

1. क. विशेषोक्ति अलंकार।

ख. तीन।

ग. विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।

घ. दो।

10.10.सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रालोक, जयदेव, व्याख्याकार डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, संस्करण 2010 ई0

10.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, व्याख्याकर डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी,

पुनर्मुदित संस्करण-2007 2. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ व्याा ख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा, विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण- 2007

10.12. निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्प्रेक्षा अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए तथा उसके भेदों को स्पष्ट कीजिए।

2. रूपक तथा उपमा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए, इनकी व्याख्या कीजिए।

3. उपमा एवं उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्दों को बताते हुए दोनों के लक्षण - उदाहरण भी लिखिए।

4. विशेषोक्ति अलंकार का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 11:अतिशयोक्ति, निदर्शना, तुल्ययोगिता,अर्थापत्ति (लक्षण,उदाहरण- व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

11.1. प्रस्तावना

अलंकारों से सम्बंधित यह पाँचवीं इकाई है इसके पूर्व की इकाईयों में आपने शब्दालंकारों के पश्चात् कतिपय अर्थालंकारों का भी उध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप अतिशयोक्ति निदर्शना, तुल्ययोगिता और अर्थापत्ति अलंकारों का अध्ययन करेंगे।

प्रसिद्धि का उलंघन करने वाली उक्ति को अतिशयोक्ति कहा जाता है। निदर्शना अलंकार में वस्तु के असम्भव सम्बंध से उपमा की परिकल्पना होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक क्रियाओं की समानता में तुल्ययोगिता होती है। किन्तु एक पदार्थ के वर्णन करते समय जब दूसरे पदार्थ का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाय तो वहाँ पर अर्थापत्ति अलंकार होता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप क्रिया गुण की समानता, उपमा की परिकल्पना, तथा कार्य-कारण के पौर्वापर्य आदि का उल्लेख कर सकेंगे।

11.2.उद्देश्य

इकाई में पृथक-पृथक स्वभाव वाले अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन प्रस्तुत हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न स्वरूपों को बता सकेंगे।

2. वस्तुओं के असम्भव सम्बंध में कवि द्वारा कल्पित उपमा क्या होती है इसका उल्लेख कर सकेंगे।

3. अनेक उपमेय तथा अनेक उपमान में क्रियाओं की समानता को बता सकेंगे।

4. अलंकारों में किसी एक के वर्णन के पश्चात् अपने आप कोई दूसरा कैसे उपस्थित होता है इसका उल्लेख भी कर सकेंगे।

5. इस इकाई में वर्णित समस्त अलंकारों में अंतर स्थापित कर सकेंगे।

11.3 अतिशयोक्ति अलंकार

यहाँ पर चन्द्रलोक में वर्णित अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करने से पूर्व अतिशयोक्ति का अर्थ और तात्पर्य जान लेना आवश्यक है। " अतिशयिता-प्रसिद्धिमतिक्रान्ता चासौ उक्तिः चेति अतिशयोक्तिः'' इस व्युत्पत्ति परक अर्थ के अनुसार प्रसिद्धि का अतिक्रमण या उल्लंघन करने वाली उक्तियों को अतिशयोक्ति कहा करते है। प्रसिद्धि का अर्थ होता सीमित। यदि यहाँ कवि प्रसिद्धि माना जाय तो दोष हो जायेगा। किन्तु व्यापक अर्थ यह है कि केवल लोक या शास्त्र की उन

प्रसिद्धियों का उल्लंघन किया जा सकता है जो परम्परया कवियों द्वारा उल्लंघित होती चली आ रही है । ऐसी प्रसिद्धि है कि कारण-के पश्चात् ही कार्य होता है। किन्तु कहीं पर कार्य-कारण एक साथ दिखाए जाय तो आचार्य जयदेव ने उसी को अक्रमातिशयोक्ति माना है। इन्होंनं कुल छः प्रकार की अतिशयोक्तियों का वर्णन किया है, जिनके क्रमिक वर्णन प्रस्तुत है-

11.3.1 अक्रमातिशयोक्ति-

इसका लक्षण एवं उदाहरण करते हुए चन्द्रालोक में कहा गया है-

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।

आलिड्न्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।। (चन्द्रालोक ।।5.41।।)

अर्थ- जहाँ कार्य और कारण एक ही समय एक साथ उपस्थित हों वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होता है। उदाहरण के लिए-

'**आलिड्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।**' अर्थात् हे राजन । आपके बाण और शत्रु लोग एक ही समय में ज्या (प्रत्यन्चा और पृथ्वी) का आलिड्गन कर लेते हैं । प्रस्तुत उदाहरण में प्रत्यन्चा पर बणों का चढ़ना और शत्रुओं का भूमि पर गिरना एक ही समय में हो रहा है। यहाँ पर शत्रु मरण कार्य और बाणों प्रत्यन्चा पर चढ़ना कारण है। इस लिए इनका एक समय में होना ही अक्रमातिशयोक्ति है।

शब्दार्थ-चेत्-यदि, कार्यकारणें युगपद्- कार्य और कारण का एक साथ होना, ते-आपके शराः -बाण, पराः-शत्रु ज्यां-पृथ्वी और प्रत्यन्चा, आलिड्गन्ति-समाभ्रयण करते हैं ।

व्याख्या- उपर्युक्त अलंकार में यह उदाहृत है कि, वाण का धनुष की डोरी से स्पर्श करना कारण तथा शत्रुओं का भूमि पर गिरना कार्य हैं । इन दोनों को एक साथ दिखाना हाथ की स्फुर्ति औ चमत्कारिता का द्योतक है। अक्रमातिशयोक्ति में अक्रमण शब्द से यह संकेतित है कि यहाँ क्रम का अभाव होता है। क्रम के अभाव का अर्थ है कार्य और कारण में उलटफेर। जब उपमान उपमेय को आत्मसात् कर लिया जाता है, तब अतिशयोकित होती है ।

चन्द्रालोक में अतिशयोक्ति का सामान्य लक्षण नहीं दिया गया है । किन्तु अन्य लाक्षणिकों ने अतिशयोक्ति को स्पष्ट रूप से वर्णित किया है, जिनमें कुछ के विचार यहाँ द्रष्टव्य है - पण्डित राज जगन्नाथ ने अतिशय की परिभाषा विषयी (उपमान) के द्वारा विषय (उपमेय) का निगरण (निगल जाना) दी है, और अतिशय की उक्ति को अतिशयोक्ति माना है । दण्डी अतिशयोक्ति को अलंकारों में सबसे उत्तम मानते है। कवि वर्णन तभी चमत्कारिक होता है जब किसी न किसी रूप में उसमें अतिशयोक्ति का हटा दी जाय तो सामान्य भाषा और काव्य भाषा में कोई अन्तर न रह जाय । उपमा

की प्रशंसा इसलिए होती है कि वह अलंकारों के मूल में होती है, किन्तु इतना होने के बावजूद भी अतिशयोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना गया है।

11.3.2. अत्यन्तातिशयोक्ति

चन्द्रलोक में इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार है -

अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे।

अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा।। (चन्द्रालोक।। 5 / 42।।)

अर्थ- जहाँ पर कारण के पूर्व ही कार्य का वर्णन कर दिया गया हो, वहाँ पर अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। इसका उदाहरण है-अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेग सा अर्थात् मानिनी नायिका का मान पहले ही चला गया बाद में उसके प्रिय ने उसे मनाया। यह सर्वत्र नियम है, कि पहले कारण होता है बाद में कार्य। और यह भी नियम है, कि पहले कार्य भी होता है, बाद में कारण, किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में प्रिय के द्वारा विनय पूर्वक मानिनी को मनाना कारण है और उसके मान का मिट जाना कार्य है। इस तरह से कार्य से पूर्व कारण का वर्णन तो उचित है। यहाँ पर इसके विपरीत वर्णन किया गया है, अतः अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

शब्दार्थ - पौर्वापर्य- पहले और बाद में कार्य-कारण व्यतिवमः-क्रम के विपरीत मानिन्या मानः- मानिनी (नायिका) का क्रोध, पश्चात् -बाद में प्रियोण-प्रियतम के द्वारा, अनुनीता-मनायी गयी।

व्याख्या - कारण सर्वदा कार्य के पूर्व होता है, किन्तु यदा-कदा शीघ्रता से जब कार्य का होना दिखाया जाता है, तो कारण को कार्य के बाद प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि यह असम्भव है, कि कारण कार्य के बाद हो, तथापि ऐसा होने पर अत्यन्ततिशयोकित अलंकार के द्वारा चमत्कारकारी अर्थ उपस्थित होता है। इस उदाहरण में अनुनय एवं मानभंग क्रमशः कारण एवं कार्य है, पहले अनुनय नहीं किया गया उसके पहले ही मान भंग हो गया। अगर यहाँ कारण बाद में न आता तो यही कारण-कार्य दोनों साथ-साथ आते है, किन्तु कोई क्रम नही होता, जबकि उत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार में क्रम रहता है, किनतु उलटा होता है।

11.3.3 चपलातिशयोक्ति

चन्द्रलोक में इसका लक्षण एवं उदाहरण निम्नवत् है-

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्यो हेतुप्रसाक्तिजे।

यामीति प्रियपृष्टाया बलयोऽभवदूर्मिका।। (चन्द्रालोका।।5/43।।)

अर्थ जहाँ पर कारण के कथन मात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो वहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार

होता होता है।

उदाहरण-" यामीति प्रियपृष्टाया: वलयोऽभवदूर्मिका ।।

अर्थात् - पति के ' मैं जा रहा हूं ' कथन सुनने मात्र से ही नायिका की अँगूठी हाथ का कंगन बन गयी ।

शब्दार्थ- यामि- (अहं गच्छामि), मै जा रहा हूँ

प्रिय पृष्टा- प्रिय के द्वारा कहे जाने पर या पूछे जाने पर , **उर्मिका**-अंगुलीयक (अँगूठी), वलय-कंगन (कणा) अभवत्-हो गया ।

व्याख्या- प्रस्तुत उदाहरण में नायक के प्रवास-गमन का श्रवन मात्र हो से ही नायिका का दुर्बल होना और उसकी अँगूठी का कंगन की तरह हो जाना बताया गया है, ध्यान देने योग्य है, कि परदेश गमन कारण है, और इसके कथन मात्र से विरहावस्था की दुर्बलता उत्पन्न है, जो कार्य है। इसीलिए यहाँ चपलातिशयोक्ति बतायी गयी है। पढ़ा, सुना और अनुभव किया जाता है, कि कारण से कार्य होता है। कारण के संदर्भ मात्र से नहीं । किन्तु में कारण के संदर्भ मात्र से ही कार्य उत्पन्न हो जा रहा है। ऐसी विशेष स्थिति में ही चपलातिशयोक्ति होती है। उदाहरण के अन्तर्गत अँगूठी का कंगन बनना कार्य है, और इसका कारण प्रिय के प्रवास की है, कि भविष्य में विरह की सम्भावना मात्र से ही नायिका इतनी दुबली हो गयी कि उसकी उर्मिका बढ़ कर कंगन के आकार की हो गयी है । यहाँ पर कार्य की शीघ्रता के कथन मात्र से चमत्कारिक अर्थ निष्पन्न है, इसी- लिए चपलातिशयोक्ति है । इस अलंकार में कारण और कार्य का क्रम तो सही है, लेकिन कारण का प्रसंग आते ही कार्य अतिशीघ्र हो रहा है, यही तथ्य अन्य अतिशयोक्ति अलंकारों से पृथक है ।

11.3.4. सम्बन्धातिशयोक्ति

सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः।

पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम ।। (चन्द्रालोका ।।5/44।।)

अर्थ- सम्बन्ध के अभाव में संबंध का कथन करना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे- पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम् ।। अर्थात्- कोई किसी से कहता है कि- देखो राज प्रासाद अट्टालिका के अग्रभाग में स्थित चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है। इस उदाहरण में अट्टालिका के अग्रभाग से चन्द्रमा का कोई सम्बन्ध न रहने पर भी उसके साथ चन्द्रमा का सम्बन्ध दिखाया गया है, अतः सम्बन्धातिशयोक्ति है ।

शब्दार्थ- पश्य- देखो, विधुमण्डलं-चन्द्रमा मण्डल, सौघग्रे - महल के अग्रभाग में विभाति-

सुशोभित होता है।

व्याख्या- जहाँ सम्बन्ध का अवसर नहीं वहाँ सम्बन्ध कहना यद्यपि गलत है, किन्तु अर्थ की चमत्कारिता के लिए ऐसा वर्णन किया गया है। प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्र बिम्ब का राजमहल से सम्पृक्त रहना दिखाया गया है। जबकि चन्द्रमा उससे बहुत ऊँचाइ पर है। राजप्रासाद की ऊँचाई को चमत्कार पूर्वक अधिक बताने के लिए चन्द्रमा का सम्बन्ध उसके अग्रभाग से जोड़ दिया गया है। जबकि ऐसा सम्बन्ध सम्भव नहीं है। कवि द्वारा चन्द्रमा का महल के साथ निकट सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया गया है, इसीलिए यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

11.3.5. भेदकातिशयोक्ति एवं रूपकातिशयोक्ति

भेदकातिशयोक्तिष्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते।

अहो अन्यैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले ॥ (चन्द्रालोक ॥ 5 / 45 ॥)

रूपकातिशयोक्तिष्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम्।

पश्य नीलोत्पलद्वन्दान्निः सरन्ति शिताः शराः॥ (चन्द्रालोक ॥ 5 / 46 ॥)

अर्थ-जब एक पदार्थ भिन्न न हो और उसका भिन्न रूप से वर्णन किया जाय तो भेदकातिशयोक्ति होती है।

जैसे-अहो अनयैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले ॥

अर्थात् - बाला के वक्षस्थल के सौन्दर्य लीला कुछ और ही है अतः भेदकातिशयोक्ति है।

इसी प्रकार- जहाँ पर रूप्य अर्थात् उपमेय रूपक अर्थात् - उपमान के मध्य में स्थित हो वहीं पर रूपकातिशयोक्ति होती है।

जैसे- पश्य नीलोत्पल द्वन्दान्निःसरन्ति शितः शराः॥

अर्थात् - देखो ! नीलकमल के जोड़े से पैने बाण निकल रहे है।

शब्दार्थ - अहो - आश्चर्य, बालाकुचस्थले-बालेके वक्षस्थल पर ,लावण्यलीला- सौन्दर्य शीला, रूप्यं -उपमेय, शिताः तीक्ष्ण बाण, नीलोत्पलद्वन्द्वाल्- नीलकमल के सेयोग से, निःसरन्ति-निकलते हैं।

व्याख्या- भेदकातिशयोक्ति के उदाहरणों में भेद न रहने पर भी दिखाया गया है जैसे-बाला के वक्षस्थल की जो लीला है वह लोक प्रसिद्ध लीला है, किन्तु भिन्न रूप से उसका अलौकिकत्व

वर्णित है। ऐसा सम्भव न होने पर भी चमत्कार जनक अर्थ उत्पन्न करते हुए इस अलंकार का वर्णन किया गया है।रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण में नीलकमल का प्रयोग आँखों के लिए और बाण का प्रयोग कटाक्षों के लिए किया गया है। में दोनों उपमान है, उपमेय के अर्थ का बोध भी कराते है। यहाँ रूप्य नेत्र एवं कटाक्ष कमल बाण रूपी रूपक में अन्तर्हित हैं अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। विशेष जानने योग्य बात यह है कि जयदेव ने चन्द्रालोक में प्रौढ़ोक्ति और सम्भवना अलंकारों को भी बताया है जिन्हें अतिशयोक्ति के अन्तर्गत ही माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित में से सही विकल्प छाँटिए-

क. जयदेव ने अतिशयोक्ति के भेद माने हैं-

1. तीन ( )
2. चार ( )
3. दो ( )
4. छः ( )

ख.कारण से पूर्व (पहले) कार्य का वर्णन होने पर, होता है-

1. भेदातिशयोक्ति ( )
2. रूपकातिशयोक्त ( )
3. अत्यन्तातिशयोक्ति ( )
4. अक्रमातिशयोक्ति ( )

ग. यामीति प्रियपृष्टाया: वलयोऽभवदूर्मिका ’ किस अलंकार का उदाहरण है-

1. सम्बन्धातिशयोक्ति ( )
2. चपलातिशयोक्ति ( )
3. अत्यन्तातिशयोक्ति ( )
4. रूपकातिशयोक्ति ( )

घ. उपमेय, उपमान के मध्य स्थित हो तो वहाँ पर होता है-

1. रूपकातिशयोक्ति ( )

2. भेदातिशयोक्ति ( )

3. अक्रमातिशयोक्ति ( )

4. रूपकातिशयोक्ति ( )

2. निम्नलिखित वाक्यों में सत्य-असत्य का निर्धारण करें।

क. प्रसिद्ध का अतिक्रमण करने वाली उक्तियाँ अतिशयोक्ति होती हैं।

ख. कार्य और कारण के एक साथ उपस्थित होने पर अक्रमातिशयोक्ति होता है।

ग. कारण के कथन मात्र से कार्य की उत्पत्ति होने पर भेदातिशयोक्ति होता है।

घ. जयदेव ने प्रौढ़ोक्ति और सम्भावना अलंकारों को भी अतिशयोक्ति के अन्तर्गत माना है।

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

क. अत्यन्तातिशयोक्ति का उदाहरण लिखिए।

ख. सम्बन्धातिशयोक्ति का लक्षण लिखिए।

ग. अक्रमातिशयोक्ति का लक्षणोदाहरण लिखिए।

4.स्तम्भ 'क' को स्तम्भ ' ख' से मिलाएँ

1. पश्य नीलोत्पल द्वन्द्वान्निः सरन्ति शिराः शराः।	अ. अक्रमातिशयोक्ति
2. पश्य सौधा ग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम्।	ब. रूपकातिशयोक्ति
3. अग्रेमाना गतः पश्यादनुनीता प्रियेण सा।	स. सम्बन्धातिशयोक्ति
4. आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते।	द. अत्यन्तातिशयोक्ति

11.4. निदर्शना अलंकार

निदर्शना अलंकार का वर्णन चन्द्रालोक में दृष्टान्त के पश्चात् किया गया है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार प्रदर्शित है-

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्षना।।

या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता।। (चन्द्रालोक।।5./58।।)

अर्थ- जिस कविता में भिन्न दो वाक्यों में समानता होने के कारण एकता का आरोप बताया जाय वहाँ निदर्शना होती है।

जैसे-या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता ।।

शब्दार्थ-सदृशयोः-दो की समानता में, वाक्यार्थयोः - वाच्य, वाचक के ऐक्यारोपः-एकता का आरोप निदर्शना-निश्चित करके दिखाना दातुः -दानी की सुधांशोः -चन्द्रमा की अकलंकता-कलंक शून्यता।

व्याख्या-प्रस्तुत उदाहरण में समान वाक्यार्थ है- दानी की सौम्यता और चन्द्रमा की कलंक शून्यता। इन दोनों या और 'सेयं' के शब्दों के प्रयोग से एकता बतायी गयी है। यहाँ पर दोनो वाक्य स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि उद्देश्य तथा विधेय के रूप में प्रयुक्त हैं। प्रथम वाक्य उपमेय है द्वितीय वाक्य उपमान है। ये दोनों एक दूसरे के आश्रय में हैं। यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है कि मम्मट ने 'नि' से निश्चय तथा ' दर्शन' से सादृश्य प्रकटन अर्थ ग्रहण करते हुए निदर्शना माना है। शाब्दिक अभिन्नता के प्रयोग के नाते पण्डित राज जगन्नाथ इसे रूपक मानते हैं। रूपक और निदर्शना का भेद यह है कि रूपक में उपमेय और उपमान एक रूप प्रयुक्त होते हैं जबकि निदर्शना में पृथक् सहायता लेकर एकता का आरोप किया जाता है। रूपक में एक ही वाक्य होता है, निदर्शना में दो वाक्य होते है, तथा दोनों परस्पर आश्रित भी रहते हैं।

आचार्य जयदेव के इस निदर्शना वर्णन को और विस्तार से जानने के लिए प्रसिद्ध लक्षणकार आचार्य मम्मट वर्णित निदर्शना अलंकार का यहाँ स्मरण करना यहाँ समीचीन लगता है। उन्होंने निदर्शना का लक्षण करते हुए कहा है कि-

निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः (काव्यप्रकाश 10.97)

अर्थात्- निदर्शना होती है, जहाँ पर वस्तुओं के असम्भव समबन्ध में उपमानोपमेय भाव वर्णित हो, अथवा वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध जो असम्भव हो अथवा उपमा का परिकल्पक हो। वे उदाहरण प्रस्तुत हैं कि-

क्व सूर्यप्रभवोवंशः क्व चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।

कहाँ वह सूर्य सम्भूत रघुवंश और कहाँ मेरी सीमिति बुद्धि, मोह के वश आकर मैं जो करना चाह रहा हूँ वह तो केवल उडुप (डोंगी नाव) के द्वारा दुरस्तर समुद्र को पार करना हुआ। इस उदाहरण में उडुप के द्वारा दुस्तर सागर का पार करना औ र कहाँ सूर्य वंश और अल्पविषयामति इनमें अर्थ असम्बद्ध है, किन्तु उपमानोपमेय भाव मान लेने पर निदर्शना बन जाती है।

11.5 तुल्ययोगिता अलंकार

जिस कविता में अनेक क्रियाओं की समानता अनेक प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थो के साथ दिखाई जाय उस कविता में तुल्ययोगिता अलंकार होता है। इसका लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करते समय

जयदेव ने निम्नलिखित विधि का आश्रय ग्रहण किया है-

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता

संकुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।

प्राचीनाचल चूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥ (चन्द्रालोक ॥ 5./51,52 ॥)

अर्थ-जहाँ क्रिया और गुण आदि के आधार पर अनेक प्रस्तुत अथवा अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की समानता का वर्णन किया जाता है, वहाँ पर तुल्योगिता अलंकार होता है ।

जैसे- चन्द्रमण्डल के उदयाचल के शिखरस्थ होने पर कमल और व्यभिचारिणी संकुचित होते हैं , **शब्दार्थ** - क्रियादिभिः-क्रिया, गुण आदि के आधार पर अनेकस्य-अनेक प्रस्तुत पदार्थो अथवा अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की । तुल्यता- समानता का वर्णन होने पर, तुल्ययोगिता- तुल्ययोगिता अलंकार होता है। सुधाकरे-चन्द्रमा के । प्राचीन- पूर्व, अचल- पर्वत, चूड़ाग्र- शिखर के अग्रभाग पर। सरोजानि-कमल, स्वरेणीवदनानि-व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख, संकुचन्ति- संकुचित हो जाते है ।

व्याख्या-तुल्ययोगिता अलंकार की विशेषता है कि इसमें अनेक प्रस्तुत और अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की समानता, क्रिया-गुण आदि-आदि के आधार पर की जाती है । जैसे-

संकुचन्ति सरोजानि......................। इस उदाहरण में सरोज (कमल स्वैरिणीवदन व्यभिचारिणी स्त्रियाँ) दोनों प्रस्तुत हैं। इन दोनों प्रस्तुतों की समानता क्रिया के आधार पर की गई है। प्रस्तुत उदाहरण में प्राचीन का अर्थ पुराना न होकर प्राची (पूर्व दिशा) है। इसी प्रकार अनेक शब्द का अर्थ दो प्रस्तुत या दो अप्रस्तुत हो सकता है। दोनों उपमेय और उपमान होते हुए भी प्रस्तुत हैं तथा संकुचित होने की क्रिया के समानता के आधार पर तुलित भी हो रहें हैं। इसी लिए यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होगा। क्रियादि पद में आया हुआ, आदि पद गुण के लिए या विशेषण के लिए प्रयुक्त है। क्रिया के समान हो जाने पर जिन दो पदों में समानता बनेगी वे उस क्रिया के कर्ता कर्म या करण कहला सकते हैं। तुल्ययोगिता का मूल स्वभाव उपमा प्रदर्शित करना है।

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोजराज ने मित्र और शत्रु और के प्रति समान व्यवहार को तुल्ययोगिता अलंकार माना है। इसी प्राकर लक्षणकार आचार्य दण्डी ने भी काव्यादर्श में उत्कृष्ठ गुण युक्त व्याक्तियाँ की समानता को तुल्ययोगिता अलंकार कहा है। इस अलंकार की विशेषता है कि इसमें दोनों या तो अप्रसतुत होते है या प्रस्तुत । इस अलंकार में उपमा वाची शब्द की आवश्यकता नहीं होती। इसके दो भेद हो सकते हैं। जब ऐसे दो पद समान महत्व के होते हैं जहाँ दो प्रस्तुतो की तुलना की जाय वह द्वितीय भेद हो सकता है । चन्द्रमा के उदित होने पर प्रकाश होता है, अतः इस कारण लोक-लज्जा वश व्याभिचारिणी स्त्रियाँ निकल नहीं पाती जिससे उदासीन हो जाती हैं । चन्द्रोदय में

कमलो का मुरझा जाना तो कवि सम्प्रदाय में सिद्ध ही है। व्युत्पत्ति परक यदि अर्थ किया जाय तो तुल्ययोगिता की व्युत्पत्ति होती है-**' तुल्यधर्मेणयोगो सम्बन्धो जातो अस्यामिति अन्वर्थनामा तुल्ययोगिता '।** तुल्ययोगिता वह अलंकार है जिसे केवल प्रस्तुत पदार्थो अथवा अप्रस्तुत पदार्थो का एक धर्म से अभिसम्बन्ध कहा गया है-

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।

एक धर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ।। (साहित्य दर्पण 10/47)

यद्यपि साहित्यदर्पणकार नें तुल्ययोगिता के वर्णन में यह स्पष्ट नहीं किया है कि औपम्य, अभिवयंग्य रहा करता है या नहीं। अलंकारसर्वस्व में रूप्यक ने बताया है कि तुल्ययोगिता अलंकार में उपमानोपमेय भाव (औपम्य) की अभिव्यंग्यता आवश्यक होती है-

'औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थत्वेन प्रस्तुतानामप्रसतुतानां वा समान धर्माभिसम्बन्धे तुल्ययोगिता। इवाधप्रयोगे ह्यौपम्स्य गम्यत्वम् ' (अलंकारसर्वस्व पृष्ट 89)

इस प्रकार तुल्ययोगिता उन अलंकारों में आता है जो गम्यमान औपम्यान्य है। अर्थात्- उसमें उपमानोपमेय भाव की अभिव्यन्जना होती है। इस अलंकार में प्राकरणिक (प्रस्तुत) पदार्थों अथवा अप्रकरणिक (अप्रस्तुत) पदार्थो में क्रिया अथवा गुणरूप धर्म का योग पदार्थगत रूप से प्रतीत होता है, तभी तो प्रतिवस्तूपमान अलंकार से इसका भेद स्थापित किया जाता है, उपमानोपमेय भाव की अभिव्यन्जना में तुल्ययोगिता अलंकार जानने के लिए उदाहरण स्वरूप कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार देखने योग्य है -

शम्भोर्यन्नखरश्मिभिः प्रणमतश्चूड़ामणित्वे स्थिता।
गंगा चन्द्रकला च सर्वजगतां वन्द्यत्वमापादिता।
युक्तायाः परतापदावविपदः कन्या पितृणामसौ
दूरीकार्यहिमालया कथमुमापादद्वयी प्राप्यते ।।

यहाँ पार्वती की पादद्वयी के वर्णन-प्रसंग में, गंगा और चन्द्रकला अप्रकृत पदार्थो में 'अपादान' की क्रिया का सम्बंध स्पष्ट है एवं गंगा और चन्द्रकला में 'बन्धत्व' आदिरूप औपम्य भी झलक रहा है।

अभ्यास-प्रश्न -2

1. निम्नलिखित में से सही उत्तर छॉटिए।

क. भिन्नवाक्यों में समानता होने के कारण जहाँ एकता का आरोप हो वहाँ होता है-

1. रूपक 2. निदर्शना 3. उत्प्रेक्षा 4. अक्रमातिशयोक्ति

ख. निदर्शना अलंकार में 'नि' का तात्पर्य है-

1. निश्चय 2. निषेध

3. निःसर्ग 4. निःसंदेह

ग. अनेक पदार्थो के साथ समानता अनेक प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थो के साथ दिखाई जाय उस कविता में होते है-

1. निदर्शना 2. सम्बन्धातिश्योक्ति

3. तुल्ययोगिता 4. अर्थापत्ति

घ. 'स्वैरिणी' का अर्थ है-

1. राजरानी 2. विदुषी

3. नेत्री 4. व्यभिचारी स्त्री

ड़. ' निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः' निदर्शना का यह लक्षण किस विद्वान किया है?

1. आचार्य मम्मट 2. आर्चाय दण्डी

3. आर्चाय विश्वनाथ 4. जयदेव

2. निम्नलिखित वाक्यों की उचित शब्द से पूर्ण करे -

क. तुल्ययोगिता उन अलंकारो में आता हैं जो गम्यमान....................है।

ख. ' दर्शन ' का अर्थ....................है।

ग. भोजराज ने...ग्रंथ लिखा है।

घ. निदर्शना को .... पण्डित राजजगन्नाथ रूप मानते है।

ड़. तुल्ययोगितामें ....की अभिवयग्यता आवश्यक होती है।

11.6 अर्थापत्ति अलंकार एवं काव्यलिंग

चन्द्रलोक में वर्णित अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग दोनों न्याय परक अलंकार कहलाते है, किन्तु अर्थ की चमकत्कादिकता भी इनमें बहुत है, जयदेव के अनुसार अर्थापत्ति का लक्षण है-

अर्थापत्तिः स्वयं सिध्येत् पदार्थन्तरवर्णनम्।

स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूहाम्॥ (चन्द्रालोक ॥5/37॥)

अर्थ- जिस काव्य में एक वस्तु के वर्णन कर देने से दूसरे का वर्णन अपने ही सिद्ध हो जाय उसमें अर्थापत्ति अलंकार होता है। जैसे- स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूहाम॥ अर्थात्-वह चन्द्रमा तुम्हारे मुख द्वारा जीत लिया गया तो कमलों पर विजय की बात क्या रह गयी।

शब्दार्थ- पदार्थान्तरवर्णम-अन्य पदार्थ का वर्णन स्वयं-स्वतः सिध्येत्-सिद्ध। अर्थापत्ति -अर्थापत्ति अलंकार स इन्दुः-वह चन्द्रमा त्वन्मुखेन-तुम्हारे मुख द्वारा जितः-जीत लिया गया सरसीरूहाम्- कमलों की, का वार्ता- क्या बात।

व्याख्या-अर्थापत्ति शब्द के दो अभिप्राय बताये जाते है-

1. अर्थस्यापत्तिर्यस्मात् 2. अर्थस्यापत्तिः अर्थापत्ति एक प्रमाण है, जो मीमांसा सम्मत है किन्तु उसमें अर्थापत्ति रूपी वाच्य सौन्दर्य का अन्तर्भाव नहीं है। जहाँ पर स्वतः कोई बात आ जाय वहाँ अर्थापत्ति होती है, उक्त उदाहरण में यह प्रतीत होता है, कि कमलों का विजेता चन्द्रमा है। जो हार गया इस अन्य पदार्थ का वर्णन मुख द्वारा चन्द्रमा के पराजित होने के वर्णन के साथ अपने आप सिद्ध है। इसी लिए अर्थापत्ति है। जब सर्वाधिक सुन्दर कमल वैसे ही हार जायेगा। नायिका के मुख द्वारा चन्द्रमा विजित है, तो इस प्रकार की विजय के समक्ष कमल के सौन्दर्य भी पराजित हैं। यह तथ्य कौमुतिक तथा दण्डापूसिक न्यायादि से सम्बंधित है, अतः यह अलंकार भी न्याय परक कहा जा सकता है।

काव्यलिंग अलंकार - जयदेव ने काव्यलिग का लक्षण एवं उदाहरण चन्द्रलोक के पंचम् मयूख में इस प्रकार किया है-

स्यात् काव्यलिंग वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः।

जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥ (चन्द्रलोक 5/38)

अर्थ- जब नवीन अर्थ का बोध कराने वाला वाक्यार्थ हो तब काव्यलिंग अलंकार होता है जैसे-

जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः। अर्थात् - हे मंद (मूढ़) कामदेव मेरे चित्त में त्रिलोचन विराजमान है अतः मैने तुझे जीत लिया।

शब्दार्थ- नूतनार्थसमर्पकः- नूतन अर्थ का बोध कराने वाले। **वागर्थ**- वाक्य रूपी पदार्थ स्यात्- मेरे चित्त में मन्द-मूर्ख (मूढ़) कन्दर्प-कामदेव , जित: असि- जीत लिये गये हो मच्चित्ते-मेरे चित्त में

त्रिलोचन- भगवान शंकर अस्ति- हैं। काव्यलिंग-काव्यलिंग अलंकार।

व्याख्या-इस अलंकार नाम अन्वर्थ है । काव्यलिंग हेतुः इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ है, काव्य का हेतु । प्रस्तुत उदाहरण में कामदाहक शंकर के तृतीय नेत्र रूपी नये अर्थ की प्रतीति है। मेरे हृदय में त्रिलोचन रूद्र है, यही वाक्य नवीन अर्थ दे रहा कि मेरे हृदय में वर्तमान रूद्र के तीसरे नेत्र से कामदेव भस्मसात् होगा । नैयायिक लोक उसी को लिंग कहते है जिस हेतु से साध्य का अनुमान किया जाता है। साध्य वह है जिसकी सिद्धि अनुमान प्रमाण से की जाती है यहाँ पर 'जितोऽसि मन्दकन्दर्प' इस वाक्य का समर्थन मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः इस वाक्य से किया गया है । कामदेव जीत लिया गया इसके लिए हृदय मे रूद्र का होना ही नवीनार्थ है। अतः नवीन अर्थ का समर्पक होने से यहाँ काव्यलिंग अलंकार है ।

यहाँ एक विशेष बात यह है, कि आचार्य भामह और दण्डी आदि प्राचीन आचार्य काव्यलिंग अलंकार को नहीं मानते है। उनके मतानुसार वैचित्र्य ही अलंकार है और काव्यलिंग को अलंकार में कोई वैचित्र्य नहीं । अतएवं यहाँ किसी प्रकार का अलंकारत्व नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ का भी अभिमत है कि काव्यलिंग को अलंकार मानना अनुचित है क्योकि काव्यलिंग में वह शोभा नहीं जिसे विचित्रता कहा जाया करता है काव्यलिंग में न तो कवि प्रतिभा का हाथ है जिससे उसे अलंकार माना जाय और न किसी चमत्कार विशेष का ही कोई पुट है न तो कविप्रतिभा का हाथ है जिससे उसमें किसी वैचित्र्य का पता चले।

अभ्यास-प्रश्न-3

1. निम्नलिखित वाक्यों का सत्य-असत्य निर्धारण करें।

क. अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग दोनों न्यायपरक अलंकार है।

ख. अर्थापत्ति शब्द के जयदेव ने तीन अर्थ बताये है।

ग. नवीन अर्थ का बोध कराने वाले वाक्यार्थ को काव्यलिंग अलंकार होता है।

घ. अर्थापत्ति कौमूतिक और दण्डापूपिक न्यायादि से सम्बन्धित है।

2. निम्नलिखित वाक्यों को उचित शब्द से पूर्ण करें-

क. अलंकारसर्वस्वकार ने...............................लिखा है।

ख. तुल्ययोगिता में....................................शब्द को आवश्यकता नहीं होती है।

ग. अर्थापत्ति एक प्रमाण है, जो ....है।

11.7. सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि अर्थालंकारों में उपमेय तथा उपमान का वर्णन प्रधान होता है, इन्ही दोनो को प्रस्तुत-अप्रस्तुत, कार्य-कारण आदि रूपों में व्यवहत्त किया जाता है। कहीं उपमान उपमेय पृथक होते है, तो कहीं उपमान और उपमेय दोनों एक होते हैं। अतिशयोक्ति अलंकार में जयदेव ने छः भेदों में कार्य-कारण को विभिन्न रूपों में चित्रित करके अलग-वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध को द्योतित करते हुए उपमा का परिकल्पक होती है। इस अलंकार में सम्बन्ध सम्बन्ध सम्भव न रहने पर भी सम्बन्ध बताया जाता है, जिससे अर्थ में चमत्कार उत्पन्न हो। अनेक क्रिया-गुण आदि का धर्म प्रधान है। पदार्थान्तर वर्णन में अर्थापत्ति का स्वयं सिद्ध होना माना जाता है। अर्थात् एक पदार्थ के वर्णन से दूसरे का वर्णन स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त काव्यलिंग अलंकार वाक्यार्थ में नवीन अर्थ प्रदान करता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें वर्णित अलंकारों के स्वभाव से परिचित करा सकेंगे।

11.8. पारिभाषिक शब्दावली

1. प्रस्तुत - उपमेय
2. अप्रस्तुत - उपमान
3. कार्य - कभी उपमेय
4. कारण - कभी उपमान
5. अक्रम - विनाक्रम के
6. चपल - चंचल, शीघ्रता
7. ऐक्यारोप - एकता का आरोप
8. सम्बन्ध - संयोग
9. प्रासाद - महल
10. भेद- अन्तर, पार्थक्य, प्रकार
11. रूपक - उपमान
12. तितीर्षु - पार कारने का इच्छुक

13. पादद्वयी - दो पैर

11.9. अभयास प्रश्नों के उत्तर

1. क. (4) - छः

ख. (3) - अत्यन्तातिशयोक्ति

ग. (2) - चपलातिशयोक्ति

घ. (1) - रूपकातिशयोक्ति

2. क. सत्य

ख. सत्य

ग. असत्य

घ सत्य

3. क. अग्र मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा।

ख. सम्बन्धतिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः।

ग. अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।

घ. आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।

4. क ख

1. ब

2. स

3.-द

4.-अ

अभ्यास- प्रश्न- 2

1. क. (2) निदर्शना, ख. (1) निश्चय, ग. (3) तुल्ययोगिता, घ. (4) व्यभिचारिणी स्त्री,

ड़ (1) आचार्य मम्मट

2. क. औपम्याश्रय ख. सादृश्य प्रकटन, ग. सरस्वतीकण्ठाभरण
घ. शाब्दिक अभिन्नता ड़. उपमानोपमेय भाव (औपम्य)

अभ्यास-प्रश्न-3

1. क. सत्य ख. असत्य, ग. सत्य, घ. सत्य

2. क. रूय्यक ख. उपमावाची ग. मीमांसा।

11.10 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अतिशयोक्ति अलंकार के समस्त भेदों का उदाहरण लक्षण सहित निरूपण कीजिए।

2. लक्षणोदाहरण सहित निदर्शना अलंकार की व्याख्या कीजिए।

3. चन्द्रालोक के अनुसार तुल्ययोगिता अलंकार का विस्तृत विवेचन कीजिए।

4. अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग के लक्षण एवं उदाहरण पर प्रकाश डालिए।

इकाई 12 . स्मृति, भ्रांति, सन्देह, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास (लक्षण, उदाहरण, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

वर्णित क्रम में यह बारहवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आपने उपमेय, उपमान के अनेक धर्म सम्बन्धों से सम्बन्धित अलंकारों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आपके अध्ययनार्थ स्मृति, भ्रांति के पक्षों को उपस्थित किया गया हैं।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से सम्बन्धित हो कर उपमानों-पमेय भाव में दृष्टान्त आदि अलंकारों की सृष्टि होती है। इसी प्रकार सामान्य से विशेष और विशेष से सामान्य के समर्थन द्वारा तथा साधर्म्य एवं वैधर्म्य द्वारा अर्थान्तरन्यास अलंकार निरूपित होता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप औपम्याश्रित स्मृति-भ्रान्ति संदेह, दृष्टान्त और अर्थान्तर- न्यास अलंकारों के लक्षणोदाहरण का ज्ञान करते हुए इनका उल्लेख भी कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में पृथक्-पृथक् स्वरूप वाले अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन प्रस्तुत हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. स्मृति अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण को जान सकेंगे।
2. स्मरण और उसकी प्रकृति को पहचानेंगे।
3. भ्रांति एवं संदेह का अंतर जान पायेगे।
4. उपमेय तथा उपमान के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव आश्रित दृष्टान्त का उल्लेख कर सकेंगे।
5. अर्थान्तरन्यास के स्वरूप से परिचित होंगे।

12.3 स्मृति,भ्रान्ति,एवं सन्देह अलंकार

लोकव्यवहार में भी भ्रम में पड़ना, शंका करना आदि समस्त कार्य कलापों में व्याप्त होते हैं। सन्देह भ्रम और स्मृति इन तीनों को बुद्धि के सामान्य संस्कार से हम नहीं जान पाते हैं, यद्यपि बहुत सारे स्थलों पर इन्हे परिभाषित किया गया है। तथापि हमारे साहित्य शास्त्रियों ने जिस प्रकार स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह का स्पष्टीकरण किया है उतना आनन्द पूर्ण स्पष्ट विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। जयदेव ने चन्द्रालोक में इन्हें पृथक उपस्थित न कर इनका लक्षण स्पष्ट न कर ऐसे उदाहरणों की सृष्टिकिया है, जिनसे इन अलंकारों के पृथक् -पृथक् स्वभाव का ज्ञान उदाहरणों द्वारा ही हो जाता है। यहाँ पर सर्वप्रथम चन्द्रालोक में एक साथ वर्णित इन अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य है-

स्यात्स्मृति-भ्रान्ति सन्देहैस्तदेवालङ्कृतित्रयम्।
पंकजं पश्यतस्याः मुखं मे गाहते मनः॥

अयं प्रमत्तमधुपरत्त्वन्मुखं वेद पंकजम् ।
पंकजं वा सुधांशुर्वेत्यस्मांकं तु न निर्णयः॥ (चन्द्रालोक 5/31,32)

अर्थ - स्मृति, भ्रान्ति और संदंह अलंकार होते है, कारण यह कि इनमें स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह होते हैं। स्मृति- जब किसी वस्तु को देखकर उसके सदृश पहले देखी गयी वस्तु के स्मरण का वर्णन होता है, तो व हाँ स्मृति अलंकार कहा जाता है। जैसे- **पंकजं पश्यतस्यस्तस्याः मुखं में गाहते मनः**।

अर्थात-कमल को देखकर मेरा मन उसके मुख को याद करता है। प्रस्तुत उदहाहरण में प्रिया कामुख पहले से देखा गया है, कमल को देखकर उसके मुख का स्मरण हो रहा है । यहाँ पर

शब्दार्थ - पंकजं -कमल को , पश्यतः-देखते हुए, मुखं-मुख को तस्या-उसके, मे मनःगाहते- मेरा मन याद करता है। तत्सदृश वस्तु का ज्ञान पूर्व ज्ञान का स्मरण कराता है। इसीलिए यहाँ स्मृति अलंकार है।

अलंकारसर्वस्व और काव्य प्रकाश में ' सदृशानुभव' से वस्त्वन्तर की समृति' को स्मरण अलंकार कहा गया है- सदृशा-नुभवाद् वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम् (अलंकार सर्वस्व), 'यथानुभवमर्यस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः स्मरणम्। (काव्य प्रकाश) । स्मरण अलंकार केवल स्मृति नहीं अपितु सादृश्योत्थापित स्मृति हैं। अलंकार सर्वस्वकार आचार्य रूप्यक का स्पष्ट कथन है -

सादृश्यं बिना तु स्मृतिर्नाऽमलंकारः

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार स्मरण का लक्षण है - सादृश्यज्ञानोद्बुद्धसंस्कार प्रयोज्यं स्मरणालंकारः। पण्डित राज सदृशज्ञान से उद्बुद्ध स्मृति को स्मरण अलंकार मानते हैं। स्मरण अलंकार की जन्मभूमि वस्तुतः उपमा है। उपमा में साधारण धर्म की एक रूपता और भिन्नरूपता में बिम्ब प्रतिबिम्बभाव तथा वस्तुप्रतिवस्तुभाव की कतिपय स्म्भावनाएँ 'स्मरण' के लिए भी लागू है।

इन्ही बातों को आचार्य विश्वनाथ ने कुछ और खोलने का प्रयास करते हुए स्मरण अलंकार के रूप में चित्रित किया है उन्होने कहा है कि -

सदृश्यानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते (सा0द0पृ. 713)

अर्थात-स्मरण अलंकार वहाँ होता है, जहाँ समान गुण धर्म वाली एक वस्तु के अनुभव से, उसी के समान दूसरी वस्तु के स्मरण का निबन्ध होता है।

इस प्रकार भिन्न -भिन्न लक्षणकारों ने स्मृति अलंकार को अलग-अलग उदाहरणों द्वारा एक ही भाव में प्रस्तुत किया है।

भ्रान्ति- वस्तुओं के विषय में मिथ्या ज्ञान भ्रान्ति कहलाता है। यद्यपि इसे मिथ्या ज्ञान कहा गया है,

तथापि किसी भी वस्तु के बारे में भ्रम होना उस ज्ञान की निश्चिता का द्योतक होता है। अतः कहा जा सकता है, कि एक वस्तु को सादृश्य के नाते निश्चय पूर्वक कुछ दूसरा समझ लेना भ्रांति है।

जैसे- 'अयं प्रमत्त मधुपः त्वन्मुखं वेद पंकजम् '

अर्थात् - यह मतवाला भौंरा तुम्हारे मुख को ही कमल समझ बैठा है। इस उदाहरण में कमल के सादृश्य के कारण मुख को कमल समझ लेने का वर्णन किया गया है, अतः भ्रांतिमान अलंकार एक भ्रांति है, जो कवियों की प्रतिभा द्वारा उत्थापित होती है, जैसे " सीप में चाँदी'' इस प्रकार की भ्रांति को भ्रांतिमान अलंकार नही कह सकते हैं। प्रयुक्त उदाहरण में मुख तथा कमल में अत्यन्त सादृश्य है, इसलिए भ्रमर को मुख में कमल की भ्रांति हो रही है।

शब्दार्थ-अयं-यह, प्रमतमधुपः मतवाला या मदोन्मत्त भौंरा भ्रांतिमान अलंकार को ठीक से समझने के लिए दो प्रसिद्ध लक्षणकारों यथा-मम्मट, एवं विश्वनाथ के अनुसार जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि अन्यों ने भी इसके वर्णन किए हैं तथापि स्थान संकोच के नाते उन्हें उपस्थित नहीं किया जा सकता । काव्य प्रकाश में मम्मट नें भ्रांतिमान का लक्षण इस प्रकार किया है- ' ' भ्रान्तिमानन्यसंवित्तत्तुल्यदर्शनें ।। (क्रा0 प्र0 10/132)

अर्थात् -भ्रांतिमान वह अलंकार होता है जिसमें प्राकरणिक के दर्शन में अप्राकरणिक के साथ उसके सादृष्य के नाते प्रतीति का वर्णन किया जाय। भ्रांतिमान शब्द में ही भ्रान्ति का शब्द निर्विवाद सिद्ध होता है। इनका उदाहरण है, " आश्चर्य पूर्ण बात है, कि अपने सौन्दर्य के अभिमान में चन्द्रमा सारे जगत् को भ्रानत बनाते दिखायी देता है। कही पर बिल्लियाँ खप्परों में पड़ी चाँदनी समझकर चाट रही है। कहीं पर हाथी झाड़ियों से छनी हुयी चाँदनी को कमलनाल समझ रही हैं, और कहीं पर कोई रमणी अपनी शैय्या पर श्वेत वस्त्र समझ कर उठा रही है।''

उपर्युक्त उदाहरण में सादृश्य ज्ञान के कारण ही इतनी भ्रान्तियों उपस्थित हैं। अतः भ्रान्ति मान है।

विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु के अनुभव को जो कवि प्रतिभा से उत्थापित हो उसे भ्रान्तिमान अलंकार माना है। अतः इसे सादृश्य मूलक अलंकार कहा जा सकता है।

सन्देह- संदेह अलंकार को परिभाषित करने के लिए जयदेव ने जो उदाहरण ग्रहण किया है, वह इस प्रकार है- **पंकजं वा सुधांशुः वा इति अस्माकं तु न निर्णयः**।

अर्थात- यह कमल है या चन्द्रमा इसका निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ। अतः इस उदाहरण में यह देखा जा रहा है, कि जैसे कोई नायक किसी नायिका के मुख को देख कर कह रहा है, कि यह उसका मुखकमल है, या चन्द्रमा इसका मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ इस प्रकार अनिर्णय की स्थिति में संदेह

अलंकार की प्रकृति व्यवस्थित रहती है।

शब्दार्थ- वा-या, सुधांशुः-चन्द्रमा अस्माकं-मेरा, हमारा न निर्णयः-निर्णय नहीं हो पा रहा है।

इस उदाहरण में कमल और चन्द्रमा दो पक्ष हैं और दोनों का ज्ञान हो रहा है, और दोनों का ज्ञान हो रहा है। किन्तु निर्णय नहीं हो पा रहा है, कि कौन ज्ञान ठीक है, और कौन ज्ञान गलत है, अथवा दोनों ठीक हैं। अतः यह बात भी सामने आती हैं, कि समान वस्तु के होने पर ही सन्देह हो सकता है।

संदेह अलंकार को विस्तार से जानने के लिए कतिपय लक्षणकारों के मतों का अवलम्ब प्राप्त करना आवश्यक होता है। अतः सर्वप्रथम हम मम्मट के मत का अनुसार करते है। मम्मट ने इसको ससन्देह से इसको विभूषित करते हुए इसका लक्षण इस प्रकार किया है-

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः (का 0 प्र0 10/92)

अर्थात् सन्देह अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमेय की उपमान के साथ एक रूपता (सादृश्यमूलकता) के साथ संशय रहा करता है, जिसमें भेदोक्ति हो, किसी वैद्यर्म्य का कथन हो और किसी वै धर्म्य का कथन न हो। मम्मट का उदाहरण है कि- क्या यह सूर्य तो नहीं है? परन्तु उसके रथ में तो सात घोड़े जुते रहते हैं ! तब क्या यह अग्नि तो नहीं ? किन्तु वह तो महिषवाहन है ! इस प्रकार, है महाराज! आपके शत्रु - सैनिक आपको संग्राम में देख-देख कर संकल्प-विकल्प किया करते हैं।''

इस उदाहरण में जो संशयात्मक प्रतीति है, वह संदिग्ध तादात्म्य भेद वैधर्म्य की उक्ति तथा भेद वैधर्म्य की उनुक्ति में सन्निहित है, इस लिए यहाँ ससन्देह अलंकार माना गया है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में भी निश्चयगर्भ और निश्चयान्त संदेह माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने शुद्ध संन्देह को प्रथम माना है। उनका लक्षण है-सन्देहः प्रकृते न्यस्य संशय प्रतिभोत्थितः। शुद्धोनिश्चयगर्भोसौ निश्चयान्त इति त्रिधा ॥ (स0द0) अर्थात्-सन्देह अलंकार वह है जिसमें उपमेय (प्रकृत) में अप्रकृत (उपमान) का कवि प्रतिभा से उत्थापित संशय कहा जाता है। शुद्ध संशय में वाक्य आदि मध्य और अन्त में वाक्य आदि अन्त में संशय किन्तु मध्य में निश्चयता का ज्ञान कराता है। निश्चयान्त सन्देह में आदि में संशय किन्तु अन्त में निश्चय होता है।

अभ्यास-प्रश्न-1

1. निम्नलिखित में से सही विकल्प छाँटिए-

क. पहले देखी हुयी वस्तु के सदृश वसतु का दर्शन से स्मरण होने पर उस वाक्य में अलंकार है-

1. भ्रान्ति

2. सन्देह

3. समृति

4. भ्रानित सन्देह

ख. ' अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेद पंकजम्' मे अलंकार है-

1. भ्रान्ति 2. सन्देह

3. स्मृति 4. भ्रान्ति सन्देह

ग. आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में सन्देह अलंकार के भेद माने हैं-

1. दो 2. तीन

3. चार 4. पाँ

घ. पंकजं वा सुधांशु वा इति अस्माकं तु न निर्णयः में अलंकार है-

1. सन्देह 2. भ्रान्तिमान

3. स्मृति 4. दृष्टान्त

2. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क. जहाँ उपमेय की उपमान के साथ एक रूपता होती.....................के साथ संशय रहा करता है, वहाँ ....अलंकार होता है।

ख. स्मृति अलंकार की जन्मभूमि वस्तुतः................................है।

ग. भ्रान्तिमान.........................अलंकार है।

घ. अनिर्णय की स्थिति में....................................अलंकार होता है।

ड़ ' सन्देहः प्रकृतेन्यस्थ संशय प्रतिभोत्थितः सन्देह का यह लक्षण ....ने किया है।

च. ' सदृशानुभवाद् वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम् स्मृति अलंकार का यह लक्षण.................में मिलता है।

12.4 दृष्टान्त अलंकार

यह अलंकार बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव से सम्बन्धित है। चन्द्रालोक में इसके लक्षण एवं उदाहरण को इस प्रकार उपस्थित किया गया है -

चेद् बिम्ब प्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः

स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः॥ (चन्द्रालोक 5/56)

अर्थ-जहाँ पर वाक्यों का परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे- स्यान्मल्लप्रतिल्लत्वे संग्रामो-द्दामहुंकृतिः। अर्थात्-संग्राम में मल्ल-प्रतिमल्ल होने से हुंकार होने लगता है । उसी प्रकार बिम्ब-प्रतिबिम्ब होने से दृष्टान्त होने लगता है।

शब्दार्थ- मल्लः-योद्धा, युद्ध प्रतिमल्ल- प्रतियोद्धा, संग्रामे-युद्ध में उद्दाम्नी-घोर, जोर से, हुंकृतिः- हुंकार स्यात्- होती है ।

व्याख्या-दर्पण में जिस प्रकार वस्तु के सम्मान परछाई होती है, उसी प्रकार एक वाक्य के समान दूसरा वाक्य आता है; तो उन दोनों वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव माना जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में अर्थ की दृष्टि से बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यद्यपि जयदेव को इस उदाहरण से स्वतः संतुष्टि नहीं हुयी होगी । इस उदाहरण में बिम्ब-प्रतिबिम्ब और मल्ल-प्रतिमल्लत्व, अलंकृति एवं हुंकृति ये पृथक् जोड़े है, जिनमें बिम्ब भाव किया जाता है, उनमें से एक तो उपमेय का चित्रण करता है, और दूसरा उपमान का दो भिन्न प्रकार के धर्म समान होने के कारण एक जैसे प्रतीत हो और उनका उल्लेख अलग-अलग किया जाय बत बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कहलाता है । दिए गए उदाहरण में अलंकृति और समान होने से तुल्य है। यदि दृष्टान्त को इस प्रकार परिभाषित किया जाय-दृष्टः सुष्ठः अवलोकितः अन्तः निश्चयों यस्य स दृष्टान्तः अर्थात् इस व्युत्पत्ति से वाक्यार्थ का निश्चय उदाहरण के द्वारा भली-भाँति कर लिया जाय तो वही पर दृष्टान्त अलंकार हो जाता है। दृष्टान्त अलंकार का जो दूसरा उदाहरण जो चन्द्रालोक में वर्णित है, वह इस प्रकार है-

दृष्टान्तश्चेद्भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः

जाता चेत्प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी॥ (चन्द्रालोक 5/57)

अर्थ- जिस प्रकार पूर्व दिशा में उदित सूर्य की शोभा से अँधेरी रात स्वयं विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आप की मूर्ति का अन्तः करण में साक्षात्कार करने से दुर्भाग्य (दैवदुर्लिपि) नष्ट हो जाता है ।

शब्दार्थ- चेत्-यदि, भवन्मूर्ति - आपकी मूर्ति, अन्तः-अन्तःकरण में दृष्टा-देखली, तत्- तो, दैवदुर्लिपिः भाग्य की दुर्लिपि, मृष्टा -मिट गयी, प्राक्- पूर्व दिशा में, भानोः-भनु की , प्रभा-दीप्ति , जाता-उत्पन्न हो गयी । तर्हि - तो विभावरी - निशा, माता-चली गयी ।

प्रस्तुत उदाहरण दृष्टान्त का बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण है । उपमेय वाक्य के 'मूर्तिः अन्तःप्रविष्टा चेत्तद् दैवदुर्लिपिः और मृष्टा पद बिम्ब है, तथा इनका प्रतिबिम्ब उपमान वाक्य में क्रमशः 'प्रभा प्राक् जाता चेत तर्हि विभावरी' और माता पदों के रूप में है, केवल भवत् और भानु शब्दों में अर्थ मात्र की दृष्टि से साम्य है, वाह्य रूप से नहीं । दुर्लिपि का मिटना और रात्रि का जाना ये दोनों धर्म हैं, जो मिलते-जुलते होते हुए भी अलग-अलग हैं ।

दृष्टान्त अलंकार को नितानत स्पष्ट रूप से समझने हेतु कतिपय आचार्यो के मन्तव्य द्रष्टव्य है-

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार दृष्टान्त में दोनो वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव आवश्यक है, किन्तु प्रतिवस्तुपमा के सन्दर्भ में दोनों वाक्यों में भिन्न पदों द्वारा प्रतिपादित एक साधारण धर्म की नितान्त अपेक्षा होती है।

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट कहते हैं-'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' (का0प्र0 10/102) अर्थात् उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और साधरण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। इनकी दृष्टि में वाकयार्थो का औपम्य अभिप्रेत है। दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के दृष्टान्त योग्य वाक्य में प्रबिम्बित होने का अभिप्राय है कि दोनों पक्षों में बिम्बप्रतिम्बि भाव होता हैं। दो वस्तुओं के (दो अर्थो) के दो ' द्वयोरर्थयोर्दिरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः यह परिभाषा प्रतापरूद्रयषोभूषण में कही गयी है। यह भाव तभी सम्भव होता है जब विशेष्य तथा विशेषण दोनों में सादृश्य का कथन हो न कि एकत्त्व का।

12.5.अर्थान्तरन्यास अलंकार

चन्द्रालोकार ने अनुषक्त अर्थ में अर्थान्तरन्यास अलंकार को परिभाषित करने के लिए उसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार किया है-

भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा।

हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्।। (चन्द्रालोक 5/68)

अर्थ-जहाँ पर मुचयार्थ से सम्बद्ध अर्थान्तर का अभिधान किया है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण है- हनुमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् अर्थात् हनुमान् समुद्र पार कर गये, महात्माओं के लिए दुष्कर क्या है ?

शब्दार्थ- भवेत् होता है , अन्यः अर्थ अर्थान्तर तस्य-उसका, अभिधा- कथन, न्यास-सम्बद्ध।

व्याख्या- अनुषक्त पद का अर्थ प्रस्तुत अर्थ से सम्बद्ध और अर्थान्तर का अर्थ अप्रस्तुत है। उदाहरण के प्रथम चरण में कही गयी विशेष बात 'हनुमान् ने सागर का पार किया का समर्थन सामान्य बात 'महापुरूषों के लिए क्या कठिन है, से किया गया है। इसमें पहली बात प्रस्तुत है और दूसरी अप्रस्तुत। यह भी कहा जा सकता है कि सामान्य बात का समर्थन विशेष बात के उदाहरण से किया गया है। प्रस्तुत सामान्य बात है और अप्रस्तुत विशेष बात है। अर्थान्तर का अर्थ प्रस्तुतका समर्थक अप्रस्तुत धर्म और न्यास का अर्थ समर्थन है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास अलंकार का नाम सार्थक है।

जनसाधारण और कवि दोनों में यह अलंकार प्रिय होता है। अर्थान्तरन्यास लोकोक्ति में प्रचलित होता है।

विशिष्ट तथ्य- अर्थान्तरल्यास अत्यन्त प्रसिद्ध अलंकार है। आचार्य भामह ने भी इसका निरूपण किया है। भामह इसका लक्षण करते हैं -

उपमन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते ।

ज्ञेयस्सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो तथा ।। (काव्यालंकार 2/11)

अर्थान्तरन्यास अलंकार को आचार्य दण्डी भी मानते हैं-

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुतस्य किन्चन।

तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुतः।। (काव्यादर्श, 2 /169)

अर्थान्तरन्यास अलंकार के लक्षण से भी अर्थान्तरन्यास शब्द की व्युत्पत्ति का यही अभिप्राय स्पष्ट होता है- अर्थ्यत इति अर्थः प्रस्तुत इति यावत्, अन्यः अर्थः अर्थान्तरं तस्य न्यास । अर्थात् प्रस्तुत से विलग अप्रस्तुत अर्थ का ऐसा उपनिबन्ध जो अन्ततः प्रस्तुत का समथ्रक हो 'अर्थान्तरन्यास' है। ' अर्थान्तरन्यास ' वाच्य चमत्कार है । इसमें उपपादन की अपेक्षा रखने वाले प्रकृट का, चाहे वह पहलं निर्दिष्ट हो अथवा बाद में निर्दिष्ट हो , समर्थक वाक्य द्वारा उपपादन अथवा समर्थन कहा जाता है ।

अर्थान्तरन्यास में प्रकृत का समर्थन होता है न कि अनुमानित नवीन अनुभव का । काव्य प्रकाश में इस अलंकार को अत्यन्त विस्तार प्राप्त होता है । वहाँ पर इसे प्रकार चित्रित किया गया है-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।

यतु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा । (का0 प्र0 10/109)

अर्थात्- मम्मट की दृष्टि में अर्थान्तरन्यास सवह अलंकार है जिसे साधर्म्य और वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य किया जाता है । इसमें विशेष तथ्य यह है कि जो समर्थन की बात कही गयी है, वह इस प्रकार होती है-

सामान्य का साधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, सामान्य का वैधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, विशेष का साधर्म्य द्वारा सामान्य से समर्थन,विशेष का वैधर्म्य द्वारा सामान्य से समर्थन -इस प्रकार दोनों समर्थन हेतुओं के दोनों प्रकारों के समर्थनों में अनुगत होने के कारण यह अर्थान्तरन्यास चार प्रकार का होता है ।

1. स्मृति , भ्रान्ति , सन्देह में अन्तर

क. तत्सदृशवस्तु के पूर्व परिचित आकार का स्मरण स्मृति अलंकार होता है । जब किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाता है, तब भ्रान्तिमान अलंकार होता है सन्देह तब होता है, जब निर्णय नहीं हो पाता है कि उक्त वस्तु क्या है ?

ख. स्मरण अलंकार सामान्यरूप से स्पष्ट होता है, क्योंकि इसमें किसी वस्तु को देखकर उसी के जैसी पूर्व में देखी गयी वस्तु का स्मरण होता है, किन्तु भ्रान्ति में किसी वस्तु को देखकर उसके समान वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान होता है, भले ही वह उलटा हो। सन्देह अलंकार में एक ही वस्तु को देखकर भिन्न-भिन्न वस्तुओं के होने कि उलझन होती है, जिसमें निर्णय नहीं हो पाता है, कि वह क्या है ?

ग. समान वस्तुओं के होने पर ही संन्देह हो सकता है एक वस्तु को देखकर तत्सदृश दो वस्तुओं का ज्ञान सन्देह परक है किन्तु स्मृति और भ्रान्तिमान में इस प्रकार की ज्ञानात्मक स्थितियाँ नही होता है।

2. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास - ये दोनों अलंकार भिन्न-भिन्न स्वरूपों वाले अलंकार हैं इनमें निम्निलखित अंतर स्थापित किए जा सकते है -

क. अर्थान्तरन्यास में सामान्य रूप से सम्भाव्य अर्थ के समर्थन के लिए विशेष रूप अर्थान्तर का तथा विशेष रूप सम्भाव्य अर्थ के समर्थन की खातिर सामान्य रूप अर्थान्तर का उपन्यास या उपस्थापन हुआ करता है। किन्तु दृष्टान्त अलंकार में मूलबात यह होती है कि इसमें सामान्य का समर्थन सामान्य द्वारा किया जाता है, तथा विशेष का समर्थन विशेष द्वारा किया जाता है। अतः इन अलंकारों की दो कोटियाँ है।

ख. वाक्यों के बिम्ब-प्रतिबिम्वत्व में दृष्टान्त होता है, जबकि सामान्य और विशेष वाक्यों द्वारा परस्पर समर्थन से अर्थान्तरन्यास होता है।

ग. अर्थान्तरन्यास में सामान्य से विशेष की और विशेष से सामान्य की समर्थन द्वारा पृष्टि होती है, किन्तु दृष्टान्त अलंकार में इस प्रकार का कोई समर्थन नहीं होता है।

घ. दृष्टान्त अलंकार में दो धर्म होते है जो एक समान नहीं होते वे समान प्रतीत होते है, किन्तु अर्थान्तरन्यास में दो धर्मो में दो धर्मो का परस्पर समर्थन दर्शाया जाता है।

ड. अर्थान्तरन्यास का अभिप्राय होता है, कि अनुपपन्न होने के कारण सम्भाव्य किसी दूसरे अर्थ का न्यास (स्थापन) करना किन्तु दृष्टान्त में इस प्रकार का कोई स्थापन नहीं होता

च. अर्थान्तरन्यास अलंकार में समर्थ्य-समर्थक भाव सम्बन्ध होता है, जबकि दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है।

अभ्यास-प्रश्न-2

निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनकर लिखें-

क. जिन वाक्यों में परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, उन वाक्यों में अलंकार होता है-

1. प्रतिवस्तूपमा 2. दृष्टान्त
3. स्मृति 4. सन्देह

ख. ' हनूमानब्धिमतरत्' उदाहरण में यह कथन है-

1. अप्रस्तुत 2. प्रस्तुताप्रस्तुत

3. प्रस्तुत 4. इनमें से कोई नहीं

ग. 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ' यह दृष्टान्त अलंकार का है-

1. लक्षण 2. उदाहरण

3. लक्षणोदाहरण 4. न्याय

घ. मम्मट ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के भेद माने है-

1. छः 2. पाँच

3. तीन 4. चार

ड. 'द्वयोरर्थयोर्द्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह दृष्टान्त की है-

1. परिभाषा 2.उक्ति

3. न्यास 4.उपपादन

च. 'द्वयोरर्थयोद्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह परिभषा किस ग्रंथ में वर्णित है-

1. काव्यादर्श 2. प्रतापरूद्रयशोभूषण

3. काव्यप्रकाश 3. काव्यालंकार

छः सामान्य से विशेष का समर्थन नहीं होता है-

1. अर्थान्तरन्यास में 2. दृष्टान्त में

3. अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त दोनो 4. कोई नहीं

ज. बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव नहीं होता है-

1. दृष्टान्त में 2. अर्थान्तरन्यास में

3. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों में

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में ....धर्म होते है।

ख. अर्थान्तरन्यास अलंकार में............................भाव सम्बन्ध होता है।

ग. अर्थान्तरन्यास में..................................का समर्थन होता है।

घ. दृष्टः सुष्ठुः अवलोकितः अन्तः निश्चयौः यस्य स दृष्टान्त।

3. सत्यासत्य निर्धारण करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब-प्रतिभाव माना जाता है।

ख. मम्मट अर्थान्तरन्यास के पाँच भेद माने हैं।

ग. अर्थान्तरन्यास अलंकार में मुख्यार्थ से समद्ध का अभिधान किया जाता है।

घ. पण्डितराज दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्बभाव मानते है।

12.6. सारांश

अलंकार वर्णन की इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि-स्मृति भ्रान्ति एवं सन्देह अलंकारों के स्वरूप किस प्रकार एक दूसरे से पृथक् है। स्मृति अलंकार तत्सदृश वस्तु के स्मरण पर आधारित है, एक वस्तु की देखकर उसी के समान देखी हुयी पूर्व वस्तु का तदाकार निश्चयात्मक ज्ञान भ्रान्ति कहलाता हे। समानता में जब एक वस्तु को देखकर दो वस्तुओं का ज्ञान हो किन्तु यह निर्णय न हो पाये कि कौन सा ज्ञान सत्य है तो उस स्थिति को सन्देह अलंकार की प्रकृति में रखा जाता है। दृष्टान्त मूलतः बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आधारित है, जिस प्रकार योद्धाओं का परस्पर हंुकार होता है उसी प्रकार उपमेय और उपमान वाक्यों के बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से अलंकृति होती है। अर्थान्तरन्यास अलंकार की स्थिति यह है कि इसमें सामान्य का विद्वोष द्वारा और विशेष का सामान्य का समर्थन सामान्य से ही होता है।

12.7. पारिभाषिक शब्दावली

1. **औपम्याश्रित** - उपमा के आश्रित। जो अलंकार उपमेय उपमान धर्म के आश्रय में रहते हैं उन्हें औपाम्याश्रित कहते हैं।

2. **मल्ल-प्रतिमल्ल** - आलंकारिक भाषा में मल्ल को योद्धा कहते है। उसके प्रतिबिम्ब भाव को बिम्ब-प्रतिबिम्ब कहते हैं।

4. दैव दुर्लिपि - भाग्य को दैव शब्द से व्यक्त किया जाता है। दुर्भाग्य को दुर्लिपि शब्द से अथवा भाग्य के बुरे लेख को दर्लिपि कहा जाता है।

5. सम्भाव्य- ऐसा हो सकता है या ऐसी सम्भावना है।

6. तत् - उसके

7. सदृश - समान

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अ 0 प्र0 1.

1. क.-3

   ख.-1

   ग.-1

   घ.-1

2. क - भ्रान्तिमान ख - उपमा ग.- सादृश्यमूलक घ- सन्देह

   ड़- आचार्य विश्नाथ

   च. - अलंकार सर्वस्व

अ0प्र0-2

1. क-2 ख. 3 ग. 1 घ. 4ङ. 1 च. 2 छ.2 ज.2
2. क . 2 ख- समर्थ्य समर्थक , ग-प्रकृत , घ . दृष्टान्त
3. क - सत्य ख- असत्य ग-सत्य घ-सत्य

12.9. सन्दर्भ पुस्तकें

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

2. चन्द्रालोक ,श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

12.10. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

2 .चन्द्रालोक ,श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

12.11. निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपमा के आश्रित अंलकारों पर निबन्ध लिखिये।

2. स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह की तुलनात्मक विवेचना कीजिये।